226.9
शास्त्री।गो।
म

गोविन्द शास्त्री

न्त्र-विज्ञान

226.9
स्त्री/गो/म

ब्रह्म, शब्द के रूप में ही व्यक्त हो सकता है, इसलिए मन्त्र नादब्रह्म का प्रतीक है। यह स्थूल और सूक्ष्म का रहस्य है। केवल मारण, मोहन, उच्चाटन ही नहीं, निर्वाण प्राप्ति भी मन्त्र के माध्यम से होती है।

प्रस्तुत पुस्तक में विद्वान् लेखक ने मन्त्र के शास्त्रीय आधार को आज के वैज्ञानिक परि-प्रेक्ष्य में सिद्ध किया है।

आज आवश्यकता है इस साधना को पुनः जीवित करने की, अतः पाठकों से आग्रह है कि वे धैर्यपूर्वक मन्त्र का प्रयोग करें और इसका चमत्कार देखें।

अनुपम पॉकेट बुक्स के अन्तर्गत अनुभवी व्यवस्थापकों के निदशन में तैयार की गई, देश-विदेश के लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकारों की अत्यन्त सुरुचिपूर्ण पुस्तकें ही प्रकाशित होती हैं।

मन्त्र-विज्ञान

गोविन्द शास्त्री

स्व० पं० [illegible]
की स्मृति में
उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी पुस्तकालय
को सादर भेंट
पं० मायापति त्रिपाठी

अनुपम पॉकेट बुक्स

226.9
शास्त्री गो|म

प्रकाशक | अनुपम पॉकेट बुक्स, शक्तिनगर, दिल्ली-७

कॉपीराइट | प्रकाशकाधीन

प्रथम संस्करण | मई, १९७३

कलापक्ष | शुक्ल, दिल्ली

मुद्रक | पुष्प प्रिंटिंग प्रेस, नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२

मूल्य : तीन रुपये

दो शब्द

मन्त्र इस युग की बहुत बड़ी आवश्यकता है। जड़ सभ्यता को बढ़ावा देकर व्यक्ति ने अशान्ति मोल ले ली है और वह उसमें जकड़ गया है। इस विषमता में उलझा व्यक्ति यदि इस पुस्तक को पढ़ेगा तो उसे अपना पीड़ित चेहरा दिखाई देगा। स्वाभाविक है कि ऐसी स्थिति में वह दिशा ढूंढना चाहेगा, युग की कुण्ठा से मुक्ति पाने का मार्ग ढूंढना चाहेगा। प्रस्तुत पुस्तक में जिस तत्परता से इस सामयिक सन्ताप को अनुभव किया गया है, उसी ईमानदारी के साथ उसका समाधान भी दिया गया है। धैर्य से पढ़ते जाने पर और विश्वास से अपना लेने पर आगे के पृष्ठ सब कुछ स्वयं बतला जाएँगे।

पुस्तक का पहला खण्ड भौतिक-विज्ञान के पाठकों के लिए, दूसरा मन्त्र-शास्त्र के ज्ञाता, साधारण और विज्ञ जनों के लिए तथा तीसरा सभी व्यक्तियों के लिए उपयोगी है।

यह विषय तकनीकी है, इसलिए सारी पुस्तक को पढ़ने से यह सुविधा रहेगी कि कोई सूचना किसी दूसरे प्रसंग में भी मिल सकती है, किसी विषय का अपवाद या व्याख्या अन्यत्र भी लिखी जा सकती है। इसके बावजूद भी यदि कोई बात स्पष्ट रहे तो लेखक से पूछी जा सकती है।

मन्त्र-विज्ञान का अध्ययन और उपासना हमारे लिए कल्याणकर रहे हैं, अतः वर्तमान पीढ़ी को और आने वाली पीढ़ी को भी इसके प्रति आस्थावान् बनाने का दायित्व हमें स्वीकार करना होगा।

चौमूँ (जयपुर)
राजस्थान

—गोविन्द शास्त्री

विषय प्रवेश

आस्था और विश्वास के बल पर ही मानव ने आज असीम अन्तरिक्ष को नाप लेने का साहस सँजोया है। निरन्तर तपस्यारत आज का मानव प्रकृति पर विजय करने का निश्चय ले चुका लगता है। कालजयी बनकर वह जीवन के सत्य को उद्घाटित करना चाहता है, क्षीर-सागर को मथकर अमृत प्राप्त करना चाहता है। उसका यह प्रयास मानव जाति के इतिहास में पहला है, कम-से-कम भारतीयों के लिए तो यह मानने की बात नहीं है। हाँ, इतना अवश्य है कि जिस तरीके से वह आगे बढ़ रहा है वह नया है। भारतीय वाङ्मय इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि आज और आज की गति से चलने पर हज़ार सालों की उपलब्धि भी कोई अकल्पित नहीं होगी, क्योंकि व्यक्ति जितनी कल्पना कर सकता है उतना कुछ घटित हो चुका है, होगा और होता रहा है। प्राचीन भारतीय ग्रन्थों के प्रकाश में इतना मान लेने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती कि अणु से भी अधिक शक्ति वाले दूसरे स्रोतों का ज्ञान भारतवासियों को था, पर उनकी वैज्ञानिक सिद्धियों का मार्ग-दर्शन करने वाले 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' और 'सोऽहम् ब्रह्मास्मि' (अर्थात् यह सब जो कुछ दीखता है, अनुभव होता है, घटित होता है यह सब ब्रह्म है, सचेतन है, उस परम का अंश है और मैं भी वही ब्रह्म हूँ जो इस

चराचर में व्याप्त है) जैसे आर्ष वाक्य थे जिनसे वह पिण्ड में ब्रह्माण्ड का दर्शन करता था, विश्व में घट रहे को अपने में अनुभव करता था और सूक्ष्म से स्थूल को नियन्त्रित मानता था। प्राचीन ऋषियों के आश्रम अपने आप में प्रयोगशालाएँ होते थे और ऋषि एक संस्था के स्वरूप होते थे। जिस समय वर्णाश्रम और जातियों का वर्गीकरण किया गया था, उस समय इस तपोनिष्ठ व्यक्ति को शर्म कहा गया था। शर्म का अर्थ होता है 'कल्याण'। यह बात आज अटपटी लग सकती है कि समाज और राष्ट्र का कल्याण एक वर्ग विशेष के पास तक किस तरह सीमित एवं संरक्षित रह सकता था, किन्तु वास्तव में इसमें कोई विरोध अथवा असंगति नहीं है क्योंकि वह शर्म अथवा ब्राह्मण वर्ग जनपदों से दूर रहकर समाज की शान्ति और सुरक्षा के लिए कल्याणकारी मार्ग ढूंढता रहता था। प्राचीन काल के योग्यतम राजा और सम्राट् इन्हीं ब्राह्मणों अथवा शर्मिष्ठों की देन हैं। अस्तु ! वह संस्था जैसा ऋषि और प्रयोगशाला जैसे आश्रम श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर वैज्ञानिक आविष्कार करते रहते थे और उन्हें समाज के लिए सुलभ कराते रहते थे। इतना अवश्य था कि उस युग में केन्द्रीयकरण की परम्परा थी इसीलिए वे आविष्कार आधिकारिक व्यक्तियों को ही दिए जाते थे। दरअसल जाति अथवा वर्ण जैसी व्यवस्था इकाईयों में केन्द्रित करने की व्यवस्था थी और उससे समाज की उन्नति एवं सुरक्षा सुदृढ़ रूप से हो सकती थी। उन ऋषियों के आविष्कार आज की वैज्ञानिक उपलब्धियों से भी बहुत आगे के रहे थे इसमें कोई सन्देह नहीं, पर उन आविष्कारों के अन्वेषण की पद्धति आज से भिन्न थी। ऋषि अहम् ब्रह्म में विश्वास करते थे इसलिए उनके शान्ति एवं विनाश के कार्य, शिव और संहार की योजनायें बाहर के साधनों पर आश्रित नहीं रहती थीं। वे जो भी कुछ चाहते, स्थूल को जिस किसी रूप में अनुशासित करना चाहते, उसे बिना किसी ताम-झाम के कर डालते थे। उनके आविष्कार और सिद्धियाँ ठीक वैसी ही होती थीं जैसी प्रकृति की। आटोमेशन (automation) या स्वचालन उनका भी सूत्र था प्रकृति का भी है और आज

के विज्ञान का प्रिय गन्तव्य भी है, पर वह स्वचालन किसी वृक्ष के जीवन जैसा था जो अपने अस्तित्व से मानव को सुख-सुविधा देता है, फल-वल्कल से जीवनदायी बनता है और निर्जीव होकर ईंधन या फर्नीचर के काम आता है तथा अन्त में उसी माता वसुन्धरा को समर्पित होकर किसी दूसरे रूप में ढल जाता है। यह तो हुई उस वृक्ष की साधारण बात। उसके जीवन की वास्तविक विशेषता यह है कि वायुमण्डल में सन्तुलन बनाये रखने के लिए प्रकृति ने मुस्कराते हुए सुकोमल पत्तों वाले, स्वादिष्ट फल देने वाले और मोहक गन्ध बिखेरने वाले पेड़-पौधे उत्पन्न किए हैं। दरअसल ये अपने आप में एक प्रकार की फैक्टरियाँ है, जो गैस वितरण करती हैं, पूर्ण और निःशुल्क, बिना किसी प्रकार के शोर-गुल के और आत्मनिर्भर होकर। प्रकृति के हर कार्य में बड़ा रहस्य छिपा हुआ है और वह स्वचालित रूप से आज तक चलता आया है, आगे भी चलता रहेगा। भारतीय ऋषियों के आविष्कार भी प्रकृति की कार्यपद्धति के अनुसार ही हुए। सारे ब्रह्माण्ड का विनाश एक छोटे-से बाण से करना, भयंकर व्याधि का बिना चीर-फाड़ के इलाज कर देना, अरबों प्रकाश वर्ष की दूरी पर स्थित लोकों का ज्ञान करना, ये सब आज के लिए अविश्वसनीय हैं, पर उस युग के लिए जीवनीय थे। उन ऋषियों के आविष्कार सर्वसुलभ नहीं थे, पर जो जनहित के लिए आवश्यक था उस पर अनावश्यक नियन्त्रण भी नहीं था। किसी भी बात को ऋषि के नाम पर प्रमाण मान लेने की बात आज भी भारतीय जीवन में है। तुलनात्मक दृष्टि से आज का आविष्कार मानव को सुखी एवं सुविधा सम्पन्न बनाने के लिए सार्वजनिक है, पर उस खरीदी सुविधा से आदमी प्रकृति से दूर चला जा रहा है, अकल्पित मशीनों के ढेर में बन्दी होता जा रहा है। आज का न्यूयार्कवासी अपने को जिन सुविधाओं से पूर्ण मानता है वास्तव में वे उसके और प्रकृति के बीच एक दीवार हैं, वह उन सुविधाओं से इस कदर घिर गया है कि केवल छटपटा ही सकता है, छूटकर भाग नहीं सकता। मानव के कल्याण के लिए

बनाई गई फैक्टरियां आज वायु सन्दूषण का खतरा बन गई हैं, मोटर और विमानों के कर्कश शब्द से आदमी की आयु क्षीण होती जा रही है। वस्तुतः ऐसा इसलिए हुआ कि आज के विज्ञान ने बाहर की सुविधायें जुटाईं, भीतर का सुख देने की बात नहीं सोची। उसने 'विज्ञान और धर्म' के स्थान पर 'विज्ञान अथवा धर्म' का नारा दिया और अन्धा होकर आदमी उसे पाने के लिए बाहर भाग पड़ा जो उसे अपने भीतर ही मिल सकता था। भारत ने सुख के लिए धर्म और सुविधा के लिए प्रकृति की निकटता तथा रक्षा एवं सुरक्षा के लिए वैज्ञानिक सिद्धियाँ सुलभ कीं। यह सब उसे भीतर से मिला था और भीतर से ही इसका सम्बन्ध था, इसलिए उसने हर वस्तु को चेतन मानकर आविष्कार किए, प्राणवान समझकर पूजा और ब्रह्म का अंश जानकर प्रतिष्ठा दी। फलस्वरूप भारतीय विज्ञान की सिद्धियाँ आत्मनिष्ठ एवं सूक्ष्मपरक थीं जबकि आज की वैज्ञानिक उपलब्धियाँ (मशीनें) बड़ी जटिल हैं और उनका उपयोग एवं रक्षण व्यक्ति के लिए एक खरीदी गई अशान्ति हो गया है।

आज भौतिक एवं रासायनिक अतएव जड़वादी विज्ञान की आशातीत सफलताओं के युग में, मन्त्र की चर्चा करना 'आउट ऑफ फैशन' होगा, क्योंकि आदमी की आँख पर ऐसा चश्मा लग गया है जो केवल बाहर देख सकता है (यह सारा विज्ञान चूँकि जड़ विज्ञान है इसलिए बाहर से बाहर की ओर भाग रहा है, हमारे ज्ञान केन्द्रों किंवा इन्द्रियों के अनुभव से आगे की बात पर हम विश्वास ही करने को तैयार नहीं हैं इसलिए यह विज्ञान केवल चश्मे से दीखने वाले तथ्य पर विश्वास करता है और इस विश्वास को सिद्ध करने के लिए उसने कई तरह की सिद्धियाँ और मशीनें हमारे सामने प्रस्तुत की हैं।) फिर भी मंत्र एक सत्य है इस दृष्टि से इस पर विचार करना शायद आज के युग की सबसे बड़ी आवश्यकता होगी अन्यथा यह सारा मार्ग, ये सारे आविष्कार, भविष्यकाल की मशीनें केवल राजपथ बन जाएँगे, मंजिल नहीं बन सकेंगे। मंजिल वही होगी जहाँ व्यक्ति इन सारे उपकरणों

के अन्तर में छिपे किसी विराट् सत्य को पहचान लेगा। मन्त्र मर सकता है, व्यक्ति का विश्वास धूसरित हो सकता है किन्तु ज्ञान-विज्ञान मानव के साथ चलने वाली ऐसी प्रवृत्तियाँ हैं जो शाश्वत हैं, अतः सत्य हैं। उपलब्धियों के उपकरण, नाम एवं प्रकार बदल सकते हैं, पर उन स्वप्नों को लेने और साकार करने की इच्छा ज्ञान के सहारे ही आगे बढ़ती है, यह यात्रा आज तक चलती आई है, आगे भी चलती रहेगी। व्यक्ति मरकर जन्मता रहेगा, भयंकर विनाश उसके आविष्कारों को नष्ट करते जाएँगे, किन्तु वह चलता रहेगा और ज्ञान उसे प्रेरणा देता रहेगा। भले ही युग के अनुसार उसकी उपलब्धियाँ भिन्न प्रकार की रहें, उसके अनुसंधान के प्रकार बदल जायें।

यह एक सार्वकालिक मान्यता है कि तत्त्व—जिन्हें हम पंचतत्व कहते हैं—वे ही रहते हैं, उनका आकार-अनुपात बदलता रहता है, उनके स्वभाव और गुणों में कोई अन्तर नहीं आता। साहित्यकार की कल्पना पिछड़ सकती है, उसके वर्णन की शैली पुरानी पड़ सकती है, किन्तु उस विषय का सत्य अथवा मूलभूत आधार झूठा नहीं हो सकता। जो विषय साहित्य और कल्पना से भिन्न हैं वे गणितीय सत्य की तरह ही शाश्वत और सदा तरोताजा रहते हैं, समय का प्रवाह अथवा व्यवहारहीनता उनको उपेक्षायोग्य कर सकते हैं, उन्हें पिछड़ा और मृत नहीं कर सकते। गणित का दो और दो चार का योगसिद्धान्त और उसका योगफल कालजयी सत्य है, न यह बूढ़ा होता है, न मरता है, भले ही जमाना इनका व्यवहार करना छोड़ दे। वास्तव में होता यह है कि कल्पना, जिसे हम कोई प्रामाणिक आधार देने को तैयार नहीं होते, एक ऐसी उत्सुक-इच्छा है जो समाज को, मानव को और विज्ञान को गति प्रदान करती है। यदि यह कल्पना न होती तो व्यक्ति की क्षमता निरर्थक सिद्ध होती। इस अप्रामाणिक मानी जाने वाली कल्पना के ही कारण सत्य को मार्ग मिलता है, विज्ञान को मूर्त आधार दिया जाता है। मन्त्र एक गणितीय सत्य है, इसमें कल्पना को स्थान नहीं है। आज कोई मन्त्र की पुस्तक पढ़े या उस पुस्तक में लिखे किसी

प्रयोग को करके असफल हो जाय तो उस सम्पूर्ण विज्ञान को असत्य और निराधार कल्पना कहने में संकोच नहीं करेगा, जबकि उसका सत्य गणित जैसा ही निर्दोष है। आज का मानव जिन वैज्ञानिक आविष्कारों का दास हो गया है और जिस भौतिक प्रगति को देखकर आश्चर्यचकित हो रहा है उससे भिन्न प्रकार का है यह मन्त्र-विज्ञान और इसकी सिद्धियाँ। यह कोई पैसे देकर ख़रीदने लायक वस्तु नहीं है, क्योंकि यह अन्तर्मुखी सिद्धि है, सूक्ष्म विज्ञान है, सचेतन शास्त्र है! इसके सत्य को हमारी स्वीकृति की आवश्यकता नहीं है। असल में यह शास्त्र अधिक उपकरणों की आवश्यकता नहीं रखता, इसलिए बाहर का सामान या मशीनी जटिलता इसमें नहीं है। यही एक कारण है कि यह बहुत गहरा तकनीक है। इसके लिए पथ-प्रदर्शक की आवश्यकता है। वैसे आज के विज्ञान के लिए भी पथ-प्रदर्शक की आवश्यकता तो रहती ही है, पर वह व्यवहार में है इसलिए वह आवश्यकता हमें मालूम नहीं होती।

भौतिकवादी दृष्टिकोण ने आत्मवादी मन्त्र-विज्ञान की प्रतिष्ठा कम कर दी और इस उपेक्षा के कारण ही मन्त्र-विज्ञान के जानकार और सिद्धियाँ कम होती गईं। आज सिरदर्द करने पर सेरीडोन की एक गोली के चमत्कार को मानने वाले मिल जायेंगे—झाड़ने से मोतीझारे जैसी भयंकर व्याधि अथवा पीलिया जैसी बीमारी के दूर होने की बात को कल्पना या अन्धविश्वास कहने वाले भी मिल जायेंगे, पर उसे सत्य मानने वाले बहुत कम मिलेंगे। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि ऐसे इलाज करने वाले हर जगह नहीं मिलते, लेकिन इसमें भी आज के भौतिकवादी दृष्टिकोण का ही दोष है, जिसने उस अमूल्य विज्ञान की क़द्र कम कर दी है, लेकिन क़द्र कम होने का अर्थ यह नहीं हुआ करता कि वह बात ही असत्य है।

मन्त्र-विज्ञान की चर्चा करने वाले से लोग यही प्रश्न करते हैं—आपके पास कुछ चमत्कार है तो बताओ, आपके पास कोई सिद्धि है तो दो। इसका अर्थ यह होता है कि आज के व्यक्ति का तरीका बदल

गया है, वह घोर भौतिकवादी हो गया है, वह हर चीज़ बिजली के पंखे की तरह या हवाई जहाज़ के टिकट की तरह ख़रीद लेना चाहता है। आत्मवादी अतएव अतीन्द्रिय-विज्ञान कभी भी इतना सस्ता नहीं होता कि उसे भौतिक उपकरणों से ख़रीदा जा सके। आज आकाश में उड़ने वाले हवाई जहाज़ के चमत्कार से चौंधियाया आदमी विमान पर साधारण रूप से विश्वास नहीं करता। सम्पूर्ण मन्त्र-विज्ञान को अविश्वसनीय कह सकता है, पर वह यह नहीं सोचता कि इस हवाई जहाज़ को उड़ाने के लिए कितने व्यक्ति काम में लग रहे हैं इस पर जमाने की कितनी आस्था है, इस पर कितना पैसा खर्च किया जा रहा है। मन्त्र-विज्ञान पर अविश्वास करने वालों से मेरा विनम्र निवेदन है कि आज की वैज्ञानिक उन्नति के लिए जितना पैसा ख़र्च किया जा रहा है, जितने परीक्षण किए जा रहे हैं, जितना सम्मान दिया जा रहा है उसका सौवाँ हिस्सा भी इस तथाकथित अन्धविश्वास के लिए किया जाता तो उनके अविश्वास में कोई आधार बनता। मन्त्र-विज्ञान की एक पुस्तक पढ़कर, उसमें बताये ढंग से जप-होम कर लेने मात्र से कुछ प्राप्त नहीं होता। इस तरह के प्रयोगों के असफल होने पर मन्त्र को असत्य बताना भी नादानी ही होती है। सच तो यह है कि आज के मशीनी युग में जड़वादिता है, इस जड़वादिता को चेतनवादी बनाने के लिए उसी भाषा में समझना-समझाना पड़ेगा जो आज के युग की व्यावहारिक भाषा है। मन्त्र की शक्ति और सत्य आज मात्र इसलिए अन्धविश्वास है कि उसे समझने वाले लोग कम रह गये हैं और जो समझते हैं वे उसको युग की भाषा में समझाने की कोशिश नहीं करते। यही कारण है कि मन्त्र और आज के जीवन मे बड़ा गहरा अन्तराल पड़ गया है, जिसे हम अन्धविश्वास के नाम से जान रहे हैं। मन्त्र अपनी जगह हैं, मन्त्र-विज्ञान की टैक्नॉलाजी अपनी पारिभाषिक शैली और शब्दावली मे है और आज का मानव अपनी आविष्कृत वस्तुओं के नामकरण एवं अनुसन्धान में व्यस्त है। दोनों को जोड़ने वाला कोई सेतु नहीं है। इसमे कोई सन्देह नही कि हमारा

पुरातन विज्ञान इन नये आविष्कारों में ढलता तो विज्ञान के अविष्कारों के कारण उत्पन्न बहुत-सी समस्याएँ, विषमताएँ, भय और आशंकाएँ नहीं रहतीं। आज के समाज में प्रसार पा रही हृदयहीनता, स्वार्थपरता और अशान्ति इस रूप में व्यक्ति के जीवन को ऊब नहीं बना पाती, क्योंकि उसमें व्यक्ति और समाज, अन्तर और बाहर, धर्म और विज्ञान को जोड़ने की योग्यता थी। उसमें विकल्प नहीं था समन्वय था, विश्लेषण या विखण्डन नहीं था समाहार या समायोजन था।

इस सारे विवेचन के सन्दर्भ में यह स्पष्ट रूप से उजागर हो गया है कि भौतिक-विज्ञान कितनी भी छलाँग लगा ले, जब तक वह व्यक्ति में छिपे विराट् को नहीं पहचान पायेगा तब तक सारा समारंभ एक लक्ष्यहीन दौड़ ही बना रहेगा। अतः आवश्यकता है उस प्राचीन सत्य को आधुनिक विज्ञान की शैली एवं शब्दावली में समझने की। किसी भी वस्तु के दो पहलू होते हैं, दोनों पहलू सम्पूर्ण होने पर ही वह वस्तु पूर्ण होती है और उन दोनों पहलुओं का ज्ञान प्राप्त कर लेने पर ही व्यक्ति अपने ज्ञान की पूर्णता का दावा कर सकता है। मन्त्र के दो पहलू हैं सिद्धि और साधना। सिद्धि लक्ष्य है और साधना लक्ष्य तक पहुँचने का मार्ग। आज का विज्ञान कारणाश्रयी विज्ञान है। वह 'क्यों' और 'कैसे' से चलता है। पहले का अन्तर्मुखी विज्ञान वेद वचन पर विश्वास करने वाला आस्थाश्रयी विज्ञान था। उसमें 'क्यों' और 'कैसे' को अवकाश नहीं। दूसरा कारण यह भी था कि यह भारतीय विज्ञान चेतन विज्ञान था, इसलिए इसकी सारी कार्यविधि और अनुभव को एक रूप में निश्चित करना संभव भी नहीं था।

भौतिक-विज्ञान के सिद्धान्त के अनुसार मन्त्र दो रूपों में अध्ययन का विषय है। पहला आधार है ध्वनि और दूसरा आधार है उस शब्द की भावना। ध्वनि व्यक्त है और भावना अव्यक्त। सुविधा के लिए भावना को विद्युत् का प्रतीक मान लेते हैं। इस प्रतीक भावना में न अव्यवहार है न वैज्ञानिक पद्धति का विरोध या असंगति। भारतीय विज्ञान व्यक्ति में पाँच कोष मानता है, अन्नमय, प्राणमय, मनोमय,

चैतन्यमय और आनन्दमय। आज के सिद्धान्त इन कोषों का विरोध नहीं करते, वे इन्हें किसी और नाम से, किसी दूसरे प्रकार से मानते हैं, अस्तु। इसका विवेचन यथासमय किया जायगा, सम्प्रति भावना को विद्युत् का प्रतीक मानने के सूत्र का स्पष्टीकरण अभीष्ट है।

हमारे शरीर की सचेतना के पीछे, इस दृश्य शरीर के अलावा दो शरीर और हैं। इस पाँच भूतों से बने शरीर को भारतीय शब्दावली में देह कहते हैं जिसमें प्राण का निवास है और तकनीकी नाम है 'फिजीकल बॉडी' जिसका दूसरा शरीर भौतिक-विज्ञान की दृष्टि से आस्ट्रल और भारतीय शैली में पुद्गल तथा तीसरा मानसिक एवं 'साइकालाजिकल बॉडी' के नाम से समझा जाता है। उपरिवर्णित अन्न एवं प्राणमय कोषों का समावेश भौतिक देह में मनोमय व आनन्दमय का मानसिक में तथा चैतन्यमय कोष का वैद्युतिक (आस्ट्रल अथवा पुद्गल) शरीर में हो जाता है। हमारी भावना को स्थूल देह तक आने के लिए वैद्युतिक शरीर में होकर आना पड़ता है जिसका अर्थ यह हुआ कि जो भावना सूक्ष्मरूप से हमारे मन का विषय थी उसे तरंगों के रूप में लाने के लिए विद्युत्रूप ग्रहण करना पड़ता है और अन्तिम स्थिति में, मूर्तरूप लेने के लिए स्थूल शरीर तक आना पड़ता है। भावना जब ध्वनि का रूप ग्रहण करती है तो उसमें शक्ति एवं सामर्थ्य की न्यूनाधिकता व्यक्ति की मानसिक किंवा वैद्युतिक क्षमता पर ही निर्भर करती है। हमारी बात में वज़न आना, हमारे वचन का प्रभावशाली होना, किसी गीत का यथोचित प्रभाव डालने योग्य होना, इन सबके पीछे वही वैद्युतिक शक्ति काम करती है। साधारणतया मन्त्र का सूत्र माना जायगा, श × वि = मन्त्र। अर्थात् शब्द जिसे ध्वनि के रूप में माना जाता है। वह तत्त्व जब भावनाओं को विद्युत् से गुणित होता है तो मन्त्र का स्वरूप बनता है। मन्त्र न केवल भावना की शक्ति है न कोरी ध्वनि ही, बल्कि ध्वनि शक्ति को वैचारिक विद्युत् से गुणित करने पर गुणनफल मन्त्र माना जाता है। इस भावना विद्युत् को इच्छा-शक्ति 'विल पॉवर' के नाम से आज वैज्ञानिक स्वीकृति मिल चुकी है।

हमारे वैद्युतिक शरीर का महत्त्व शनैः-शनैः भौतिक-विज्ञान के लिए अध्ययन का विषय होता जा रहा है। 'अपोलो ११' के अन्तरिक्ष यात्रियों के स्वास्थ्य का हाल जानने के लिए एक यन्त्र लगाया गया था जो उन यात्रियों के शरीर में होने वाले विद्युत् प्रवाह की सूचना धरती तक भेजा करता था और उस सूचना के आधार पर वे अन्तरिक्ष यात्रियों के स्वास्थ्य की स्थिति जान लेते थे। यद्यपि आज यह विधि इतनी सामान्य नहीं हुई कि हरेक चिकित्सक इसका उपयोग कर सके, किन्तु भविष्य में इस संभावना से और इस विधि के विकास से इन्कार भी नहीं किया जा सकता। यही विधि भारतीय विज्ञान के लिए विशेषतया मन्त्र-विज्ञान के लिए व्यापक रूप से ज्ञात आधार रही थी। हठयोग और मैस्मेरिज़्म या हिप्नोटिज़्म 'विल पॉवर' का चमत्कार तो हैं ही, वैद्युतिक शक्ति का आश्चर्य भी हैं।

शरीर में प्रतिदिन उत्पन्न होने वाली बिजली दैनिक कार्यों में काम आती है अथवा उपयोगहीन अवस्था में व्यर्थ चली जाती है। मन के द्वारा अर्जित विद्युत् सूक्ष्म रूप से विचारों के रूप में प्रवहमान रहती है। शरीर के द्वारा उत्पादित विद्युत् इन्द्रियों के माध्यम से निर्गत होती है। इस घार्षणिक एवं चुम्बकीय विद्युत् के निर्गम के द्वार मुख्य रूप से हाथ एवं आँखें हैं। हठयोगी या मैस्मेरिज़्म करने वाला आँखों से मोहनिद्रा के वशीभूत करता है, हाथों से पाजिंग करके पात्र की विद्युत् शक्ति को निष्प्रभ करके उसके मानसिक शरीर पर नियन्त्रण करता है। मन की विचार तरंगें भी मुख्यतया आँखों के माध्यम से गमन करती हैं। वैसे इन तरंगों के लिए आँखें ही एकमात्र निर्गमद्वार नहीं हैं, पर प्रत्यक्ष सम्पर्क होने पर आँखों की मूकभाषा सब कुछ समझा देती है। आँखों के त्राटक से सिंह का सम्मोहन भी संभव है। हमारे इर्द-गिर्द घूमने वाले कुत्तों पर इस शक्ति का प्रयोग करके देखा जा सकता है। यदि किसी कुत्ते की तरफ हम स्निग्ध दृष्टि देखेंगे तो वह पूँछ हिलाने लगेगा और क्रोध से देखने पर गुर्राने लगेगा। यह मानसिक विद्युत् का भावनात्मक प्रतिफलन नहीं तो और क्या है?

प्रथम दृष्टि में ही प्रेमपाश में बँध जाने के मुहावरे की सत्यता का कारण यही मानसिक विद्युत् का तीव्र प्रवाह है। शारीरिक एवं मानसिक विद्युत् में विचार संप्रेषण योग्यता रहती है। इसका दूसरा अनुभव सिद्ध प्रयोग भी है। मान लीजिए हम एक रेलगाड़ी में यात्रा कर रहे हैं, हमारे पास एक ऐसा व्यक्ति बैठा है जिससे हम सम्बन्ध बढ़ाना चाहते हैं। हम इस भावना को बिना शब्दों में व्यक्त किये ही उस निकटस्थ व्यक्ति तक पहुँचा सकते हैं। हमारे स्पर्श से हमारे विचार उस तक संक्रमण कर जायेंगे और यदि उस व्यक्ति में हमसे कम प्रभाव है तो वह हमारी भावनाओं का प्रभाव ग्रहण कर लेगा अथवा हमारे विचारों में अतिशय पवित्रता है तो भी वह उसे अनुकूल बना लेगा। यह सब विद्युत् शरीर की सक्षमता भी माना जा सकता है।

दोनों ही विद्युत् एक प्रकार की नहीं होतीं। एक होती है ऋणात्मक, दूसरी होती है धनात्मक। घार्षणिक ऋण धनात्मक जिसे देह 'जैनरेट' करता है, चुम्बकीय-उभयात्मक जिसे मन उत्पन्न करता है। इनका विनियोग-उपयोग विद्युत् शरीर करता है जो सीधे मन से अनुशासित है। हाथ मिलाने की यूरोपीय परम्परा भारत के लिए आदर की वस्तु नहीं, क्योंकि उसमें दूसरे व्यक्ति की अनुकूल-प्रतिकूल विचारवाही विद्युत् के सम्पर्क से प्रभावित होना पड़ता है। भारतीय हाथ जोड़ते हैं जिसका अर्थ होता है ऋणात्मक और धनात्मक विद्युतों को स्वयं में सीमित करना। बड़ों के द्वारा सिर पर हाथ रखकर आशीष देने का अर्थ होता है उनकी विद्युत् शक्ति का हमारे में प्रक्षेप।

हमारे शरीर में दोनों प्रकार की चुम्बकीय और घार्षणिक-विद्युत् का प्रवाह अनवरत रूप से चलता रहता है। चुम्बकीय विद्युत् मानसिक शरीर से प्राप्त होती है, घार्षणिक भौतिक शरीर से। हमारे सिर में दर्द होने पर हाथ से दबाने से तसल्ली मिलती है, इसका कारण केवल रक्त प्रवाह में सन्तुलन या आवश्यकतानुसार तीव्रता उत्पन्न होना ही नहीं होता, प्रत्युत हाथ से निकल रही विद्युत् तरंगों द्वारा बिजली के सर्किट में उत्पन्न न्यूनता या अधिकता का सन्तुलन भी होता

है। रक्त प्रवाह के तीव्र होने से केवल सर्दी के कारण उत्पन्न सिरदर्द ही कम या बन्द हो सकता है थकान या इलैक्ट्रिकल सिस्टम की खराबी के कारण हुआ सिरदर्द बन्द नहीं हो सकता। इसके समानान्तर एक उदाहरण हम अपने जीवन में और देख सकते हैं। हाथ सीने पर रखा रहे तो कई व्यक्तियों को नींद में भयानक सपने दिखते हैं, इसका कारण भी यही है कि हाथ से निकलने वाली विद्युत् तरंगों का प्रवाह रक्त संचार-संस्थान के केन्द्र, हृदय को प्रभावित करता है।

कभी-कभी हम किसी नई अपरिचित जगह पर जाते हैं तो वहाँ देर तक नींद नहीं आती, इसका कारण यह होता है कि उस स्थान में स्थित विद्युत् तरंगों का सामंजस्य हमारे शरीर की विद्युत् से नहीं हो पाता। डाकुओं के बीहड़ में या शेर की माँद के आसपास हम भयभीत हो जाते हैं क्योंकि उस वातावरण में सूक्ष्म रूप से फैली विद्युत् तरंगें उग्र और शक्तिशाली होती हैं। वे हमारे शरीर के पावर सर्किट को क्षीण-शक्ति करने लगती हैं, जिसे हम भय अथवा कातरता के रूप में अनुभव करते हैं। ऋषियों के आश्रमों में सिंह और मृग एक ही घाट पर पानी पीया करते थे। इसका रहस्य भी यही था कि ऋषियों की शक्तिशाली ऊर्जा वातावरण में फैली रहती थी और उसके प्रभाव के कारण प्राणी अपने जन्म-जात वैर को भूल जाया करते थे। आश्रम में जाने पर लोगों को परम शान्ति का अनुभव इसीलिए होता था। जिन जगहों को भुतहा कहा जाता है वहाँ किसी आत्मा का रहना एक तथ्य है, किन्तु कई बार कई दृश्य घटित होते दिखते हैं। इस दृश्य दर्शन का भारतीय दृष्टिकोण से स्पष्टीकरण यह है कि उस वातावरण में घटित घटनाओं की अथवा रह चुके व्यक्तियों की विचार तरंगें जब किसी व्यक्ति विशेष के विद्युत् शरीर की पकड़ में आ जाती हैं तो मन उनको अनुभव का विषय बना लेता है। मन इतना समर्थ है कि वह अपने अनुभव को बलात् इन्द्रियों पर लाद देता है और इन्द्रियाँ उसे मूर्त रूप से ग्रहणीय मान लेती हैं अन्यथा मृत प्राणी और घटनायें पंच भूतों के समावेश योग्य होती ही नहीं है, पर ऐसा ठीक वैसे ही हो जाता है जैसे किसी ने सपने में नोटों

का बण्डल पाया हो और उसे इतना विश्वास हो गया हो कि वे उसके तकिये के नीचे धरे हुए हैं।

मानसिक शरीर में संकल्प-विकल्प होते ही रहते हैं। मन्त्र की चुम्बकीय शक्ति को समझने के लिए मन की शक्ति और विद्युत् तन्त्र की कार्यविधि को समझ लेना आवश्यक होगा। इस सूत्र को अपने जीवन में घट रही घटनाओं के माध्यम से समझना अधिक सरल रहेगा। वास्तव में मन का काम ट्रान्समीटर और रिसीवर जैसा होता है। वह अपनी भावनाओं का प्रसारण भी करता है और संग्रहण भी, पर इन सबके लिए पुद्गल शरीर 'इलैक्ट्रिकल बॉडी' का माध्यम आवश्यक होता है। मन ने जिन संकल्पों को जन्म दिया, जिन कल्पनाओं का सृजन किया उनको तरंगों के रूप में संप्रेषणीय बनाना और वायुमण्डल में तैर रही तरंगावली को पकड़कर विचार अथवा कल्पना के रूप में परिवर्तित करने के लिए मन को समर्पित करना पुद्गल शरीर की विशेषता है। कई बार हम देखते हैं कि हमारे मन में हमारे निकटस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य के बारे में आशंका खड़ी हो जाती है और कालान्तर में वही आशंका सत्य भी सिद्ध हो जाती है। ऐसा इसीलिए होता है कि हमारे मन ने विद्युत् शरीर के सहयोग से उन तरंगों को पकड़ लिया जो हमारे लिए छोड़ी गई थीं। इन तरंगों के लिए समय या दूरी कोई महत्त्व नहीं रखती। महत्त्व रखती है संप्रेषक की भावना और संग्रहीता के मन की संवेदनशीलता।

दरअसल मन दो प्रकार का काम करता है, स्वयं भी कल्पना करता है और बाहर की विचारावली को भी ग्रहण करता है। उसकी कल्पना की सीमा, ज्ञान और अनुभूत का ही विविध रूपों से समायोजन करने तक है अथवा प्राप्त अनुभवों की प्रतिक्रिया तक है। नवीन उद्भावना का कहीं न कहीं आधार होता है, मूर्त आधार! अथवा किसी विधि विशेष के कारण मन की शक्ति का विकास करने पर अलौकिक और अतीन्द्रिय अनुभूतियाँ हो जाया करती हैं।

हम अपने मन को स्वच्छ करने पर कई विशिष्ट अनुभव कर लेते

हैं। मन के स्वस्थ होने का लक्षण भी यही है कि उसे जो भी कहा कुछ जाय वह स्वतः कर ले। मान लीजिए हमें रात के दो बजे की गाड़ी से जाना है और हम आश्वस्त होकर सो गए हैं। ठीक दो बजे के आस-पास हमें चेत हो जाता है तो यह मानसिक स्वस्थता का चिह्न है। यह स्थिति कोई असंभव वस्तु नहीं है। इस स्थिति तक पहुँचने के लिए आवश्यकता है मन को निर्मल करने की। मन में विकार आहार, संसर्ग, आवेश आदि कारणों से आते हैं। यदि इनमें सावधानी बरती जाय तो मन की शक्ति से परिचित हुआ जा सकता है। मन को संवेदनशील बनाने के लिए (संवेदनशील तो मन होता ही है पर उसे हमारी इच्छा और दिशानुसार काम करने योग्य बनाने के लिए) मन्त्र बहुत बड़ा साधन है। हमारा मन निर्मल है तो वातावरण में हो रहे सूक्ष्म से सूक्ष्म परिवर्तन को भी वह पकड़ लेगा, वातावरण में हो रही साधारण से साधारण घटना को भी वह ग्रहण कर लेगा तथा कालान्तर में वह उन्हीं सन्देशों को पकड़ेगा जो इसके लिए आवश्यक हैं और संप्रेषणीय विचारों को इतने समर्थ ढंग से ट्रांसमिट करेगा कि वे प्रभावशाली गति एवं प्रकार से गमन करें। मन्त्र साधन में यह बात प्राथमिक उपलब्धि हुआ करती है। साधारण स्थिति में हमारा मन एक बिगड़े ट्रांसमीटर रिसीवर सैट की तरह हुआ करता है। वह अनावश्यक सन्देशों का संग्रहण भी करता है तो क्षीण विचार तरंगों का संप्रेषण भी करता है।

विज्ञान की नवीनतम खोजों के आधार पर आज यह विश्वास की बात हो गई है कि जनसंख्या वृद्धि का सबसे बड़ा भय भीड़ होगी। बढ़ती जनसंख्या का पेट भरा जा सकता है, पर भौतिक-विज्ञान की जड़ मशीनों के कारण बेतहाशा बढ़ रही भीड़ के विचारों पर नियन्त्रण नहीं रखा जा सकता और चूँकि यह विचार तरंगों की भीड़ धर्म से शासित नहीं है इसलिए व्यक्ति को इतना उच्छृंखल कर देगी कि शासन और व्यवस्था का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाएगा। आज व्यक्ति दुःखी है, टूट रहा है, परेशान है तो इसका एकमात्र कारण यह

है कि आज के वायुमण्डल में अनर्गल विचारों का विष फैला हुआ है, उनको सन्तुलित करने वाले आश्रम नहीं हैं। फैक्टरियों से उठते धुएँ के विष का शमन करने वाली होमाहुतियों की धूम लुप्त हो गई है, अनाचार की भावनाओं का शमन करने वाली पवित्र भावनाएँ क्षीण हो गई हैं। मशीनों की कर्कश आवाज़ को हतप्रभ करने वाली संगीत एवं स्वस्ति वचन की लहरों का अनुपात बहुत कम हो गया है। वास्तविकता यह है कि आज के वायुमण्डल में बड़ी क्रूरतापूर्वक अनाचार और निरंकुशता के विचार छोड़े जा रहे हैं, एकान्त में या स्वतन्त्रता के पवित्र अधिकार का उपभोग करता हुआ व्यक्ति सामाजिक रूप से अनाचार तथा अशान्तिकर विचारों का प्रसार कर रहा है और वे विचार तरंगों का रूप ग्रहण करके शेष समुदाय को दुःखी एवं पथभ्रष्ट किए दे रहे हैं। वायु संदूषण के ज्ञात भय से अधिक विचारदूषण का भय उत्पन्न हो गया है और यह व्याधि अत्यन्त उग्र रूप से हमारे लिए अनिवार्यता बन गई है। आज का मानव शारीरिक दृष्टि से नहीं मानसिक दृष्टि से क्रूर, रुग्ण और दयनीय बन गया है। यह क्रूरता इस सारे समाज को उसी तरह लील जायेगी जिस तरह यदुकुल आपस में ही लड़कर नष्ट हो गया था। आज का वैज्ञानिक इस भय से परिचित हो गया है, किन्तु वह इसका प्रतिकार कर सके, इसमें सन्देह ही है। हो सकता है विश्व की जनसंख्या पर नियन्त्रण पा लिया जाय, पर नियन्त्रण पाने तक इस संसार के वातावरण में इतने दूषित विचार एकत्रित हो जाएँगे जिनका पवित्रीकरण शायद संभव ही नहीं हो अथवा जैसा होता आया है कि पुराने को मिटाकर नया बनाने के लिए उस लीला पुरुष को फिर आना पड़े। खैर अन्तरिक्ष युग में मन्त्रों का पक्ष लेना और वर्तमान पीढ़ी का ध्यान इस ज्ञान की ओर आकर्षित करने का मेरा निगूढ़ आशय यह भी है कि इससे विचार मण्डल शुद्ध होगा।

मन्त्र के जप में हल्का भोजन, संयम से रहना, पवित्रता का ध्यान रखना आदि बातें पूर्व सावधानताएँ हैं जिनसे मन अन्तर्मुखी बनता है।

मन्त्र के जप से मन की शक्ति उद्दीप्त होती है और उसकी उर्जा को एक राजमार्ग मिलता है। मन्त्र में विशिष्ट ध्वनि वाले शब्दों का प्रयोग किया जाता है। मन्त्र साधन में भावनात्मक एवं मानसिक उर्जा का क्या महत्त्व होता है, यह बात संक्षेप में उदाहरणों द्वारा सिद्ध कर दी गई है। उस बिजली की कार्यविधि भौतिक-विज्ञान द्वारा प्रदर्शित कार्यविधि से भिन्न नहीं है।

अब प्रश्न आता है शब्द का। शब्द के लिए ईसाई वेद कहता है, भगवान् शब्द स्वरूप है। भारतीय शास्त्र कहता है, शब्दो वै ब्रह्म। इन उक्तियों में आश्चर्य भी नहीं है और कोई असाधारणता भी नहीं है। वही सत्य है जो अन्तर्मुखी द्रष्टाओं ने देखा-पाया है। शब्द अक्षर है, ध्वनि रूप ग्रहण करने के बाद शब्द का विनाश नहीं होता है। अनन्त अन्तरिक्ष में वे सारी ध्वनियाँ सनातन रूप से स्थित रहती हैं। शब्द को अविनाशी प्रभु एवं व्यापक मानने वाला सिद्धान्त इसी आधार पर स्थापित हुआ है। हमारे दैनिक जीवन में हम जिन शब्दों का व्यवहार करते हैं वे स्थूल जगत् के प्रतीक हैं। उदाहरण के लिए हम अनन्त और विशाल शब्द का प्रयोग करते हैं। साधारण स्थिति में बुद्धि इसका अर्थ सीमाहीनता और विस्तृत सीमा से लेती है, पर यह परिज्ञान निष्प्राण और शुष्क रहता है। रात्रि में जब हम अपने सिर पर छाये अनन्त आकाश की ओर देखते हैं, उसमें चमक रहे, गतिशील विशाल पिण्डों को देखते हैं तो अनन्त शब्द सजीव हो उठता है। ऐसे ही किसी महासागर के मध्य में या किनारे पर स्थित होकर उस विस्तीर्ण जलराशि को देखते हैं तो विशाल शब्द का आत्म-दर्शन करते हैं। मन्त्र जिस भाषा के माध्यम से रूप ग्रहण करते हैं वह अत्यन्त वैज्ञानिक है, उसमें शब्द को आत्महीन नहीं माना जाता। प्रकृति का रहस्य उस भाषा की शब्द योजना में स्वतः प्रमाण बनकर आता है। इस वैज्ञानिक आधार पर ही शब्दों का ज्ञान हुआ है, ध्वनि को मानवीय रूप मिला है, भाषा विशाल अविनाशी अनन्त ब्रह्म का व्यक्त स्वरूप बन सकी है। मन्त्र में प्रयुक्त शब्दों का इतिहास ऐसा

ही अनुभवगम्य है। यदि जप ही सब कुछ होता और भावना ही महत्त्व रखती तो तराजू जपने से भी कार्यसिद्धि हो सकती थी, किन्तु ऐसा न संभव था, न उचित। इस दृष्टि से यह शंका हो सकती है कि कृष्ण शब्द तो पहले ही था फिर कृष्ण के जन्म लेने के पश्चात् ही वह शब्द मन्त्र की श्रेणी में किस तरह आ गया? यह शंका सत्य है पर इसके समाधान में दो युक्तियाँ हैं। पहली युक्ति है कृष्ण उस परम सत्ता का लीला-विग्रह थे और वह अनन्त अपरिमेय शक्ति सघन कृष्ण वर्ण ही हो सकती है। इसलिए, बना-बनाया प्रतीक दे दिया। इससे ऐसा लगा कि वह बुद्धिगम्य कृष्णता का प्रतीक कृष्ण शब्द सजीव हो उठा था। दूसरी युक्ति यह है कि उन शब्द प्रतीकों में उस लीला पुरुष के कृत्यों ने शक्ति डाल दी। यह बात उसी तरह होती है जिस तरह कोई व्यक्ति बैट्री के सैल्स के रूप में चार्ज करके रख दे। वस्तुतः जिन्हें हम ऋषि कहते हैं उन्होंने मन्त्रों में शक्ति की प्रतिष्ठा उसी तरह की है जैसे पत्थर की तराशी गई मूर्ति को मन्दिर में स्थापित करने पर उसमें विधिपूर्वक प्राण-प्रतिष्ठा की जाती है और वह पूजनीय बन जाती है। विवकानन्द, परमहंस, गाँधी और लिंकन के नाम पहले भी थे, किन्तु इन व्यक्तियों के जीवन और कृत्य इन नामों को स्पृहणीय बना गए। यह बात लोकव्यवहार से सिद्ध है।

शब्द में संप्रेषणीय शक्ति अत्यन्त सशक्त रूप में विद्यमान है। उसकी गति अव्याहत है। जल, पृथ्वी और बिजली से अधिक गति-शील है, यह और किसी भी माध्यम से गमन कर सकता है। ठोस पदार्थ के इस ओर किया गया आघात उस ओर सुना जा सकता है। हमारे कान की सुनने की शक्ति की एक रेंज—परिसीमा बँधी हुई है अन्यथा यह क्षीण से क्षीण और महत् से महत् रूप ग्रहण कर सकता है और समग्र विश्व में अव्याहत रूप से गमन कर सकता है। ईथर के माध्यम से सुगमतापूर्वक गमन करने की क्षमता इसी में है, इसी लिए इसे ब्रह्म के समान अणोरणीयान् और महतो महीयान् कहा जा सकता है।

व्यक्ति की सुप्त शक्तियों को उद्दीप्त करने अथवा स्वयं के विराट् से साक्षात् करने के लिए दो राजमार्ग हैं, दो मुख्य प्रकार हैं। एक है मन्त्र, दूसरा है योग। मन्त्र का चरम साध्य भी एकत्व है तो योग का अन्तिम प्राप्य भी मुक्ति है। मुक्ति कोई कल्पित आयाम अथवा स्थिति नहीं है, एक साधारण स्थिति है जो भारतीय गहन चिन्तन का निष्कर्ष है। मन्त्र इस विश्व में व्याप्त अनेकत्व में एक तत्त्व का अन्वेषण करता है। भौतिक सिद्धियाँ मन्त्र की अन्तिम लक्ष्य नहीं होतीं, पर ये चमत्कार उसके सामर्थ्य के आगे कोई विशेष महत्त्व भी नहीं रखते। मेरा आशय यह है कि जो अणुविद्युत् हमारे घर में हल्का-सा प्रकाश फैलाने वाले बल्ब में चमकती है वही अकल्पित शक्ति का केन्द्र होती है। जीवन और जगत् का परम सत्य उद्घाटित करने की क्षमता मन्त्र में है। योग प्राण तत्त्व अर्थात् वायु के ज्ञान-नियन्त्रण को आधार मानता है और उसकी शक्ति का प्रत्यक्षीकरण करता है। मन्त्र आकाश तत्त्व की उपासना है। किन्हीं दृष्टियों से मन्त्रविधि योग से अधिक सरल-सुगम रहा करती है। आकाश में एक ही तन्मात्रा है अर्थात् एक मात्र शब्द ही आकाश का व्यक्तिकरण है। योग वायु तत्त्वाश्रयी है, इसलिए उसमें शब्द और स्पर्श ये दो तन्मात्रायें हैं। दो तन्मात्राओं के कारण वायुतत्त्व की सामर्थ्य कम हो जाती है और उस पर भार भी बढ़ जाता है इसीलिए योग की पूर्व सावधानियाँ अधिक हैं, कठोर हैं।

प्रश्न है मन्त्र में शब्द के महत्त्व का। विश्व के मन्त्र-शास्त्र को भारतीय संस्कृत के मन्त्र निर्माण की विधि ने बहुत बड़ी देन दी है। यद्यपि आज के साबर मन्त्रों में 'लूणा चमारी की दुहाई' 'महमदा पीर की दुहाई' और 'गुरु गोरखनाथ का वजन साचा' जैसी शब्दावली प्रयोग में आती है, तथापि इसमें न वह वैदिक या तन्त्रोक्त मन्त्रों जैसी सामर्थ्य है न शास्त्रीय आधार। ये मन्त्र काम करते हैं—इसमें कोई संदेह नहीं, पर इनकी इस कार्यक्षमता के पीछे विश्वास और उन चरित्रों के तप का ही तत्त्व है। तिब्बती या बौद्ध मन्त्रों में भी संस्कृत के इस सूत्र की उपेक्षा नहीं की गई है। इतर देशों के मन्त्र, मन्त्र न होकर तन्त्र हो

जाते हैं, उनको मन्त्रों का महत्त्व नहीं मिल सकता। आइये, जिस आधार पर मन्त्रों का गठन होता है उसका वैज्ञानिक आधार समझ लें।

संस्कृत विश्व में प्रथम और अद्वितीय भाषा है जिसकी शब्दावली के निर्माण का ठोस आधार है और जिसके पास नवीन शब्द निर्माण करने की अप्रतिम शक्ति है। आज का विज्ञान जिसे तत्त्व कहता है वह एलिमैण्ट है। संस्कृत का तत्त्व इस एलिमैण्ट से भिन्न और विशाल वस्तु है। तत्त्व शब्द का अर्थ है 'उसका भाव'। 'वह' है परम ब्रह्म जिसका फलितार्थ यह हुआ कि ये तत्त्व के नाम से ज्ञात पृथ्वी, जल, वायु, तेज और आकाश उस परब्रह्म के भाव हैं। यह सारा संसार जो आँख से देखा जाता है, कान से सुना जाता है और त्वचा से अनुभव किया जाता है इन पाँच तत्त्वों का करिश्मा है। पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, नदी, पर्वत इन सबका आकार, गुण, प्रभाव आदि में नानारूप इसलिए हैं कि इनमें इन तत्त्वों का अनुपात बदल जाता है। इस सृष्टि में कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं जो एक तत्त्व का बना हुआ है, क्योंकि सृजन के लिए दूसरे तत्त्वों का संयोग एक आवश्यक शर्त है। यदि किसी भी वस्तु में किसी एक तत्त्व का सर्वथा अभाव हो जाएगा तो वह वस्तु नष्ट हो जाएगी। इस विनाश प्रक्रिया के लिए भारतीय तकनीक उत्क्रान्त शब्द बतलाता है। यमराज मृत्यु के प्रतीक इसलिए हैं कि उनके पास उत्क्रान्त करने वाली शक्ति है।

इस संसार की रचना का आधार पंच तत्त्व हैं। इस तथ्य से हम भी परिचित हैं, हमारे पूर्वज भी परिचित थे। इस आधार को ढूँढने से व्यक्ति का जीवन बड़ा सुगम बन गया था। भाषा के कारण ही नहीं, एक गंभीर रहस्य के उद्घाटित हो जाने के कारण भी। हमारी भारतीय-देववाणी का आविर्भाव इस अन्तर्दर्शन का ही फल है। जब यह सर्वविदित है कि पाँच तत्त्वों से इस संसार की रचना हुई तो हमारी भाषा भी इसी आधार पर बनी, विकसित हुई। भाषा में पाँच वर्ग होते हैं और हर वर्ग में पाँच ही अक्षर रहते हैं। स्वर भी पाँच हैं तो उनका उच्चारण करने के मुख्य स्थान भी कण्ठ, तालु, मूर्धा, दन्त और औष्ठ

पाँच ही हैं। लोक में जिस तरह एक तत्त्व में दूसरे तत्त्वों का समावेश होता है, उसी तरह प्रत्येक वर्ग के पाँच अक्षरों की पाँच की संख्या उन दूसरे तत्वों की उपस्थिति का प्रतीक है। प्रधान तत्त्व का प्रतीक वह वर्ग होता है इसलिए उसकी मुख्यता के साथ दूसरे गौण तत्वों का प्रतिनिधित्व शेष अक्षरों पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिये 'ह' कार से बनने वाले शब्द लें। हस्त, हस्ती, महान्, अहंकार, वराह, अहि, सिंह इत्यादि शब्दों में हकार का योग है। 'ह' वास्तव में आकाश तत्त्व का प्रतीक है। इस अक्षर में आकाश की-सी बुलन्दी और महिमा है। इन शब्दों के प्रतीकों में वह उच्चता किसी न किसी रूप में वर्तमान है। उस महिमा की स्थिति हकार के स्थान एवं बलाघात पर केन्द्रित है। तत्त्व की प्रखरता या मन्दता को मुखर करने के लिए हकार को प्रथम, मध्यम अथवा अन्तिम स्थान मिला है। इसके साथ ही हकार मे जोड़े गए स्वर भी उसकी गुणकता तथा मात्रा में वृद्धि-ह्रास का ज्ञान कराते हैं।

भाषा के इस सूत्र के अनुसार शब्द द्रष्टा ऋषियों के लिये सृष्टि के विलासों का नामकरण कोई कठिन वस्तु नहीं रही। संयुक्त राष्ट्र-संघ का नामकरण आज की शती के लिये समस्या हो सकती है, अन्तर्द्रष्टा ऋषियों के लिए नहीं। शब्द की वैतरणी लाने वाले तपःपूत ऋषियों के समक्ष प्रकृति ने जो भी पदार्थ रखा उसके लिए उसका अभिधेय पद देने में कोई विषमता शब्द के मर्मज्ञों के लिये नहीं रही, क्योंकि उन्होंने जिस भी वस्तु को देखा उसके गुण, परिणाम, तत्त्वों का अनुपात एवं आकार को तदनुरूप अक्षर संयोजन करके नाम रख दिया। इस स्थिति में भाषा का वैज्ञानिक आधार भारतीय दृष्टि से सिद्ध हो जाता है। पुष्प को पुष्प ही क्यों कहा? इस निरर्थक-से लगने वाले और बालकों की-सी जिज्ञासा वाले प्रश्न का सप्रमाण तथा युक्ति-संगत उत्तर भारतीय संस्कृत भाषा दे देती है। कमल के पुष्प को कमल कहने का कारण उसका रूप, गुण एवं तत्त्वों की स्थिति ही है जिसे महर्षियों ने दिव्य चक्षुओं से देखा व अनुभव किया था। कमल के लिए

पद्म या शतदल जैसे पर्यायवाची शब्द स्थूल बुद्धि से पर्यायवाची हो सकते हैं, किन्तु ये यथार्थरूप में खण्ड बोध हैं। एक दृष्टि से देखने पर कमल पुष्प का जो रूप दिखाई दिया उसे कमल कह दिया, दूसरे आयाम से देखने पर जो गुण दृष्टिगत हुए उनको पद्म कह दिया, तीसरे प्रकार से आँकने पर जो विशेषता प्रतीत हुई उसे शतदल कह दिया। वास्तव में सतही तौर पर जिनको पर्यायवाची कहा-समझा जाता है वे शब्द उन पदार्थों के अपर नाम हैं जिनमें एक दूसरी स्थिति चित्रित रहती है, परमार्थतः तो ये सारे पर्यायवाची मिलकर ही उसका समग्रबोध करा सकते हैं जैसे हम किसी मकान को आगे से देखकर उसके लिये एक कोण का चित्र बनाते हैं, पिछवाड़े से देखकर दूसरा, बगल से देखकर तीसरा-चौथा, कोण से देखकर आगे की कल्पनायें करते हैं। उस एक ही मकान के विभिन्न रूप असत्य नहीं हैं, पर सत्य समग्र होता है इसलिये उस मकान के सम्बन्ध में जितने कोण बनते हैं, उन कोणों में से देखने पर हमें जो प्रतीति होती है वह खण्ड बोध है, तथ्य है उन भिन्न-भिन्न तथ्यों किंवा खण्ड बोधों का एकीकृत रूप, वह मकान होगा और वही सत्य होगा। एक ही वस्तु के कई नाम होने का रहस्य भी यही है। हम भगवान् के सहस्रनाम लेते हैं। इस सहस्रनामता में भी वही तथ्य है कि उसे जितने आयामों से देखा जाय उतनी ही भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रतीतियाँ द्रव्य की होती हैं। यथार्थ रूप में वे सारे शब्द या नाम मिलकर ही उस सत्य का निरूपण करने अथवा सम्पूर्ण प्रतीक उपस्थापित करने में समर्थ होते हैं।

यह तथ्य, इस युक्ति से और सिद्ध हो जाता है कि भाषा का निर्माण शब्दों से नहीं अक्षरों से हुआ। बालक भाषा को अक्षरों के रूप में ही सीखता है और बोलता है, शब्दों के रूप में नहीं। यह उदाहरण हमें विश्वसनीय भले ही न लगे पर इस अविश्वास का कोई आधार नहीं है, न इसकी प्रामाणिकता पर किसी प्रकार का सन्देह ही किया जा सकता है। यद्यपि बालक का भाषा-ज्ञान अनुकरण पर निर्भर करता है, पर सृष्टि के आदि प्रतीक, ब्रह्मा के मानस पुत्रों के लिए अनु-

करण के स्थान पर अन्तर्दर्शन ही अधिकतम एवं प्रामाणिक युक्ति है। उन अक्षरों से या लघुतम इकाई से शब्दों का गठन ईश्वरीय वरदान रहा था या मानव की स्वर्जित अलौकिक दृष्टि का चमत्कार।

ऐसी सुस्पष्ट आधारभित्ति पर बना भाषा का प्रासाद जीवन्त रहा। वह भाषा हमारी अनुभूति के लिये विषद सरणी ही नहीं स्थूल पर नियामक भी बन सकी। इस संसार के पदार्थों की दशा में परिवर्तन, परिवर्धन भी उनके उग्र अथवा क्षीण होने पर निर्भर करता है इसलिये उन शब्द प्रतीकों के माध्यम से स्थूल पदार्थों को सूक्ष्म के साथ जोड़ दिया गया और वे शब्द की सीमा से दूर छिटक ही नहीं सके। मन्त्रों में सर्वाधिक शक्ति सम्पन्न बीज मन्त्र उक्त भाषा सूत्र के स्पष्टतम प्रमाण हैं। तत्त्वों के सन्तुलन से मानसिक शक्तियों को उद्दीप्त करना तथा मन को आत्मकेन्द्रित करना इन ध्वनिगों का किंवा शब्दों का विषय था। जो भाषा सारे संसार को परस्पर जोड़े हुए है वही भाषा व्यक्ति को नितान्त तटस्थ एवं अन्तर्मुख कर देती है। यह उस भाषा का चमत्कार नहीं है वरन् भाषा के वैज्ञानिक संयोजन का फल है। भाषा की महिमा को हम समझ नहीं पाते, क्योंकि वह दैनिक अनिवार्यता बन गई है इसलिये हम उसका उपयोग करने में थोड़ी भी सावधानी या दया नहीं दिखाते, निर्मम होकर निरंकुश प्रयोग करते रहते हैं। भाषा का जो वास्तविक महत्त्व राबिन्सनक्रूसो या मुनि समझते थे उसी महत्त्व को मन्त्रोपासक साक्षात् करता है। अपने अभीष्ट विषयों की सिद्धि के कारण वह भाषा को पवित्र और उच्चतम स्थान देता है। वैय्याकरणी आचार्यों ने एक-एक शब्द को कामधेनु के समान माना है और इस मान्यता में कोई दोष भी नहीं दिखता। भाषा अथवा शब्द आज के मशीन रूपी प्रतीकों के समान अहर्निश सेवा तत्पर हैं। किसी भी मशीन का बटन दबाने पर वह गतिशील हो जाती है, यही स्थिति भाषा की है और भाषा से अधिक सिद्ध मन्त्रों की है। सिद्ध मन्त्र को दिन में, रात में, शून्य में वा जनसंकुल स्थान में जहाँ कहीं भी प्रयोग किया जायगा वह कार्य करेगा। मन्त्र की इस निराकार मशीन

के पीछे इसका तात्त्विक प्रतिनिधित्व ही कार्य करता है। साधक की समस्या के कारण भाषा के वे वाक्य ऊर्जस्वित् हो जाते हैं और उनकी शक्ति विचित्र एवं आश्चर्यपूर्ण कार्य सम्पन्न करती है। जिस शक्ति का दर्शन मन्त्र के जप करने पर होता है, वह बात हमारे जीवन में घटती रहती है। गाय को गाय रूप में जानने के लिये और कहने के लिये हमें इस शब्द का कितनी बार जप करना पड़ा था यह बात थोड़ा स्मरण करने से हमें आज भी याद आ सकती है। जप होता है अभ्यास। अभ्यास से व्यक्ति में पूर्णता आती है, इस लक्ष्य से भौतिक-विज्ञान का ध्वजधर पश्चिमी जगत् और आत्मवादी भारत दोनों ही परिचित हैं।

सत्य तो यह है कि आज का विज्ञान निषेध से विधेय को प्राप्त करना चाहता है, विखण्डन से संश्लेषण को प्राप्त करना चाहता है। यह वैसी ही स्थिति है जैसे किसी घड़े का आधा भरा होना। घड़ा आधा भरा है इसका दूसरा अर्थ यह भी है कि घड़ा आधा खाली है। जितना सत्य घड़े का भरा होना है उतना ही सत्य उसका खाली होना भी है। एक मध्य-बिन्दु वह भी आता है जहाँ रीतापन और भरापन मिलते हैं। उस स्थिति में भरापन भी है, खालीपन भी है और भरापन भी नहीं है तो खालीपन भी नहीं है। भाषा के क्षेत्र में अधुनातन विज्ञान का यह नकारात्मक प्रश्न व्यवहार में आ रहा है और आज का परिज्ञान उस रिक्तता का ही परीक्षण करता आ रहा है। 'एण्टी,' 'एनैलिसिस,' 'ऐक्स्प्लॉयट' ऐसे ही शब्द हैं जो निषेध को उपजीव्य मानकर चलते हैं। अस्तु ! मन्त्र में जप एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है जिसे मन्त्र से भिन्न नहीं माना जा सकता। जप में अनवरत अभ्यास करने से विशिष्ट ऊर्जा उत्पन्न होती है जो स्थूल जगत् में अपेक्षित परिवर्तन करती है।

मन्त्रों का गठन करके उनको परिणामाश्रयी बनाकर वर्गीकृत कर दिया गया। मारण, मोहन, वशीकरण, रोगनाश, स्वप्नसिद्धि आदि भौतिक सिद्धियों की लालसा से प्रेरित होकर पुराण पुरुषों ने ध्वनि समायोजन करके भाषा को मन्त्र का स्वरूप दे दिया। इस समायोजन

का सूत्र तत्त्वों के अनुपात को देखकर किया गया था। मारण के लिये प्रयोग में लाये जाने वाले मन्त्रों में वही उत्क्रामकशक्ति है। मारण कर्म के लिये वायु तत्त्व को क्षीण करने वाले शब्दों का प्रयोग किया जाता है अथवा आकाश तत्त्व को उग्र करने वाली वर्णावली का प्रयोग किया जाता है जिससे एक तत्त्व स्वत: क्षीण हो जाता है अथवा दूसरा इतना उग्र हो जाता है कि अन्य को लील जाता है। अभिचार कर्म पर विश्वास करने वाले या देखने-करने वाले जानते हैं कि इस कर्म से जो अनुष्ठान किया जाता है वह अत्यन्त उग्र और भीषण होता है उससे पात्र (जिस पर वह प्रयोग किया जाता है) की हृदय की या मस्तिष्क की शिरायें फट ही जाती हैं। इस आकस्मिकता की कोई चिकित्सा नहीं की जा सकती। वे ध्वनि तरंगें शक्तिशाली विद्युत् प्रवाह के माध्यम से गमन करती हैं और अभीष्ट व्यक्ति के वैद्युतिक शरीर को अस्तव्यस्त कर देती है, जिसका प्रभाव भौतिक शरीर पर पड़ता है अन्यथा यह ज्ञात तथ्य है कि मन्त्र द्वारा ऐसा प्रयोग करने पर न कुछ खाने को दिया जाता है न उस व्यक्ति के मन पर तीव्र एवं भयकर प्रभाव डालने के लिये कोई स्थिति उत्पन्न की जाती है। यह एक अनपेक्षित, आकस्मिक रूप से अनुभव की जाती है। स्तम्भन के प्रयोगों में वायु तत्व का शमन किया जाता है तो वशीकरण-सम्मोहन में जल तत्त्व की प्रधानता वा प्रतीक वर्णों का संयोग किया जाता है।

रोग नाश के लिये जिन मन्त्रों का प्रयोग किया जाता है वे आयुर्वेद के मतानुसार रोग के मूल कारण कफ, पित्त, वात दोषों को प्राकृतिक स्थिति में लाने के लिये हमारे वैद्युतिक शरीर को व्यवस्थित करते हैं। सौभाग्यवर्धक मन्त्र हमारे मानसिक जगत् को प्रभावित करते हैं। जिन मन्त्रों में देव-दर्शन की अथवा उनकी कृपा का प्रसाद प्राप्त करने की व्यवस्था दी गई है वे व्यक्ति के अन्तर्निहित विराट् का साक्षात्कार कराते हैं अन्यथा यह संभव हो ही नहीं सकता कि वह परम शक्ति कोई रूप ग्रहण कर सके और हमारे सम्मुख प्रकट हो सके। वास्तविकता यह है कि उस शक्ति का कोई रूप है ही नहीं। यह व्यक्ति की

कल्पना का प्रसाद है जो उसे नाना रूपों में उपास्य मानता है। उपासना करने पर वह शक्ति कोई भी प्रतीक उपस्थित कर सकती है जिस में व्यक्ति आत्मदर्शन कर ले। उस स्वयं परम ब्रह्म को अथवा पराशक्ति को लोक साधन के लिये जब-जब अवतार लेने की आवश्यकता हुई तब-तब उसने पंच तत्त्वों को ही आश्रय माना और इन्द्रियगम्य शरीर ग्रहण किया। भारतीयों का अवतारवाद इस सिद्धान्त का प्रतीक है। यदि परम शक्ति का कोई रूप होता तो इतने अवतारों के प्रतीक भारतीय जीवन में उपास्य होते ही नहीं। महाभारत युद्ध में परब्रह्म के षोडष कलावतार कृष्ण ने जब अपना स्वरूप अर्जुन को दिखाया तो वह भयभीत हो गया। यह समस्त चराचर, अतीत, अनागत ये सब उस विराट् रूप में दिख गये। वह विराट् रूप कोई निश्चित आकार नहीं था बल्कि इस असीम का दिग्दर्शन था। फिर अर्जुन भी उस अनन्त को अपनी नंगी आँखों से देख नहीं सकता था। कृष्ण ने उसे दिव्यचक्षु दिये तभी वह देख सकने योग्य हुआ। वह विराट् रूप ही परम शक्ति का वास्तविक स्वरूप हो सकता है। वास्तविक रूप है उसकी विराट्ता, गतिशीलता, परिवर्तनशीलता।

शब्द, मन्त्र में अनिवार्य तत्त्व है। आज की नवीनतम स्थापना के अनुसार किसी भी शब्द के जप में इतनी शक्ति नहीं आ सकती कि वह स्थल जगत् में कोई विशिष्ट परिवर्तन कर सके। श्रव्य-ध्वनि—'ऑडिबल साउण्ड' तीस वर्षों तक अनवरत रूप से उत्पन्न की जाय तो उससे इतनी शक्ति उत्पन्न होगी जिससे एक प्याली पानी गर्म किया जा सकता है। शब्द की ज्ञात शक्तियों के आधार पर आज का विज्ञान यह विश्वास करता है कि यही ध्वनि कर्णातीत तरंगों में उत्पन्न की जा सके तो इससे तीस सैकण्ड में इतनी ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है। भौतिक-विज्ञान की यह मान्यता मन्त्र में अर्थ नहीं रखती क्योंकि मन्त्र से जिन लक्ष्यों की प्राप्ति की जाती है वे ध्वनि पर अथवा ध्वनि के सीधे कर्णगत स्वरूप से सम्बन्ध नहीं रखती। उनके गमन का प्रकार और माध्यम सूक्ष्म जगत् वैद्युतिक तरंगों की विधि है। अधु-

नातन प्रयोगों ने यह सिद्ध कर दिया है कि व्यक्ति के शरीर तन्त्र में ऐसे अवयव हैं ही नहीं जो कर्णातीत तरंगें उत्पन्न कर सकें। हमारे मुख से उत्पन्न ध्वनि की 'फ्रीक्वेंसी' सीमित है। जिन साधनों से कर्णातीत तरंगें उत्पन्न की जाती हैं उनकी फ्रीक्वेंसी व 'वाइब्रेशन' अति-सूक्ष्म एवं अकल्पित द्रुतता लिए हुए हैं जिनसे बड़ी मात्रा में शक्ति प्राप्त की जा सकती है। यह तथ्य प्रयोगों द्वारा प्रमाणित हो चुका है।

नवीन प्रयोगों द्वारा स्थापित मान्यता के सम्बन्ध में मुझे बहुत नहीं कहना है। मेरा आधार विज्ञान का सामयिक तकनीक अवश्य है, पर उससे आगे भी कुछ है यह कहने में मुझे कोई संकोच नहीं, क्योंकि कोई भी उपलब्धि अन्तिम नहीं हुआ करती। एक सिद्धि दूसरी संभावना का द्वार खोलती है, एक पूर्ति दूसरी आकांक्षा को जन्म देती है, इसलिए विज्ञान का और सिद्धियों का कोई समापन बिन्दु आया ही नहीं करता। मेरा इस संदर्भ में यही निवेदन है कि शायद विज्ञान का यह शैशव है, कालान्तर में वे उपकरण खोज लिए जाएँ जो कर्णातीत तरंगों से भिन्न किन्तु अधिक शक्तिशाली तरंगावलियों से परिचय प्राप्त कर सकें।

मन्त्र में मुख्यतः ध्वनि का विशेष स्थान नहीं है। ध्वनि से मेरा आशय कर्णगोचर रूप से है। कर्ण से ग्रहणीय ध्वनि की सीमा को ही आज का विज्ञान नाप सका है। कण्ठ के भीतर जिन स्थानों से वे शब्द फूटते हैं उनको जान सकने के लिए कोई प्रयत्न नहीं किए गए। मन्त्र शास्त्र भी श्रव्य ध्वनि को तीसरे स्थान पर मानता है और उसकी गति शक्ति एवं सीमा को अत्यन्त संकुचित समझता है। जिस ध्वनि को सुना जा सकता है उसे प्रौष्ठ माना जाता है। उससे दस गुनी अधिक क्षमता वाले जप उपांशु होते हैं जिनमें ओंठ नहीं हिलते केवल श्वासों के आवागमन में अभीष्ट मन्त्र के शब्दों का आभास किया जाता है। उपांशु जप से भी दस गुना अधिक अर्थात् प्रौष्ठ से सौ गुना अधिक शक्तिशाली जप मानसिक होता है जिसमें मन मन्त्रनिष्ठ होकर जप का अभ्यास करता है। मन की सहज-संकल्प-विकल्पशीलता इस जप

में मन्त्र को समर्पित हो जाती है। मानसिक जप का यह प्रकार काल्पनिक नहीं है। व्यवहारयोग्य तथ्य है, किन्तु अभ्यास साध्य भी है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

मानसिक जप व्यवहार सिद्ध है। जब ऐसा जप किया जा सकता है तो उस मन्त्र का इन्द्रियातीत स्वरूप हो जाता है। मन चूँकि 'सुपर सैंस' होता है इसलिए उसके द्वारा अनुभूत शब्दावली का उद्भव एवं अस्तित्व कहीं न कहीं होता ही है। इस अस्तित्व तक आज का वैज्ञानिक नहीं पहुँच पाया। इसलिए उसका यह मान लेना कि व्यक्ति के वाणी तन्त्र में ऐसा कोई अंग होता ही नहीं जो कर्णातीत तरंगें उत्पन्न कर सके, न कोई अन्तिम सत्य है न विचारणीय निष्कर्ष।

मन्त्र के जप में ध्वनिगत शक्ति का सयोजन होता है। मन्त्र ध्वनि के कारण ही शक्ति सम्पन्न होता है। शक्ति आती है स्फोट के कारण। मन के द्वारा अनुभव की जा रही शब्द राशि भी शरीर के किन्हीं सूक्ष्म अंगों में स्फोट के द्वारा उत्पन्न हो रही होती है वे स्थान जहाँ विभिन्न अक्षरों का मूल है तथा स्फोट होता है, साधारणतया ज्ञेय नहीं होते। हमारा शरीर इतना निर्मल नहीं होता कि वह हमारे लिए पारदर्शी हो जाय और हम उन स्थानों को जान लें जहाँ से भाषा के विविध वर्ण ग्रहण करते हैं। यह विषय मूलतः योगशास्त्र का है। योग की क्रियाओं द्वारा निर्मल किए गए शरीर में षट्चक्रों का स्थान, कार्य एवं स्वरूप जाना जा सकता है। स्वर रहित अक्षरों का उच्चारण करने की सामर्थ्य भी योगी में ही होती है। भगवान् शंकर ने एक चक्र विशेष का, जो भृकुटि में होता है—उन्मेष करके काम-वासना को सदा-सदा के लिए व्यर्थ कर दिया था, यह योगी की ही सामर्थ्य थी। सांसारिक विषयाशक्ति से मुक्ति पाने के लिए साधक भृकुटि में ही ध्यान लगाया करता है। इस विश्लेषण के आधार पर यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि जहाँ योगशास्त्र पहुँच चुका है। वहाँ भौतिक-विज्ञान नहीं पहुँच पाया है। कौन कहे भविष्य में भी इस दिशा में जिज्ञासा जगे या नहीं पर भौतिक-विज्ञान के प्रमाणित किए

बिना भी सत्य, सत्य ही रहेगा।

मन्त्र का जप करने वाला अनुभव करता है कि जो भगवान् शंकर ने योग सिद्धि से किया था, वह शब्द ब्रह्म की उपासना से भी प्राप्त हो जाता है। कई मन्त्रों के अनुष्ठान में काम, क्रोध, लोभ, मोहादि विकार (इनको विकार इसलिये कहा गया है कि ये बाँधते हैं, मन की शक्ति को क्षीण करते हैं, चित्त की वृत्तियों को बहिर्मुखी बनाते हैं) सर्वतः समाप्त न भी हों तो भी क्षीण होते जाते हैं, कारण कि अभीष्ट मन्त्र की शब्दावली का स्फोट जहाँ से होता है उन कमलों के विकोचन से सात्विक अनुभूतियाँ, अतीन्द्रिय प्रतीतियाँ और अन्तर्मुखी उज्ज्वलता स्पष्ट होने लगती है। जागतिक विकारों का आत्यन्तिक विनाश नहीं हो पाता पर वे मन को अधिक आकृष्ट करने योग्य नहीं रहते।

मन्त्र के ध्वनि पक्ष के साथ जुड़ा हुआ है लय पक्ष। शब्द का निश्चित आकार होता है, ध्वनि का सुनिश्चित प्रकार। लय को हम ट्यून के रूप से जानते हैं। ट्यून में शब्द का बलाघात, आरोह, अवरोह, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत आदि व्यावहारिकताओं का समावेश होता है। 'रोको—मत जाने दो' वाक्य में यति का थोड़ा-सा विपर्यय करने से 'रोको मत—जाने दो' जैसा अर्थ हो सकता है। इस तथ्य को 'इन्द्र शत्रो विवर्धस्व' के उपाख्यान से समझाया गया है और मन्त्र मर्मज्ञ शब्द के साथ उसकी ध्वनि एवं ट्यून को भी समझता है। यही उस मन्त्र का प्राण है। शब्द के साथ उसकी ट्यून जुड़ी हुई है और यह ट्यून का ही प्रभाव है कि वह हमको रुलाती है, हँसाती है। बिना गीत के संगीत से—केवल वाद्य यन्त्रों की ध्वनि से—हम दुःखी और प्रसन्न हो सकते हैं। यह ट्यून की ही करामात है। सिंह का गर्जन, बादलों की गरज, समुद्र का तर्जन हमें भयाक्रान्त कर देता है क्योंकि उसकी लय में रूद्रता है। झरने का कल-कल नाद, पक्षियों का कलरव, वंशी की धुन हमें विभोर कर देती है क्योंकि उसमें मनोहारिणी शिवता है। हर्ष देने वाले गीत की शब्दावली को यदि विलाप के सुर में गाया जाय तो वह उपहासास्पद स्थिति उत्पन्न कर देगा—यह सारा कुछ लय का, यति का।

ट्यून का ही प्रभाव है। संस्कृत का छन्द-शास्त्र इसी आधार पर निर्मित है। कालिदास के कुमार संभव का 'रति विलाप' अथवा रघुवंश का 'अज विलाप' ऐसे छन्द में लिखा गया है कि श्रोता चाहे संस्कृतज्ञ नहीं हो उसकी आँखों में करुणाजनित अश्रु उमड़ पड़ेंगे। इस यति को मर्यादा-बद्ध करने के लिए शास्त्रीय आधार दिया गया है जिसका मुख्य स्वरूप गणात्मक है। छन्द-शास्त्र के तगण-रगण आदि गण शब्दों के संयोजन का यति पक्ष हैं। काव्य शास्त्र केवल मानसिक जगत् के लिए होता है, उससे सूक्ष्म अथवा स्थूल जगत् में कोई चमत्कार उत्पन्न करना अभीष्ट नहीं होता इसलिए वह साहित्यिक विभाव-अनुभाव, स्थायी भावों के उद्दीपन-साधारणीकरण तक सीमित रहता है। वह भावनाओं की मन तक यात्रा है, इससे अधिक कुछ नहीं। गणों के स्वरूप निर्धारण से यति का रूप निश्चित किया गया है। माँगलिक स्थलों का वर्णन करते समय भगणादि छन्दों का निषेध है। भगण रूद्र का प्रतीक है, रूद्र है गति का विराम। इस तथ्य की सामयिक पुष्टि रवीन्द्रनाथ के और मैथिलीशरण गुप्त के निधन के समय उनके द्वारा रची गई कविताओं से होती है। मृत्यु के कुछ समय पहले जो कवितायें इन स्वनाम धन्य कवियों द्वारा रची गईं उनमें प्रथम पद भगण का था। इन दोनों उदाहरणों से हमारे प्राचीन ऋषियों की युक्ति भगण से प्रारम्भ होने वाले छन्दों का ग्रन्थारम्भ में अथवा माँगलिक अवसरों पर वर्ण्य विषय के लिए उपयोग निषिद्ध है, सिद्ध हो जाती है। यही तथ्य मेरे मित्र श्री रामचरण शर्मा 'व्याकुल' ने भी उद्घाटित किया जिनके पास राग-शास्त्र के और गण स्वरूपों के तान्त्रिक चित्रों का अप्रतिम एवं दुर्लभ संग्रह है। यह यतिगुण भी मूलतः भाषा के गठन सिद्धान्त पर आधारित है। एक भाषा का प्रयोग अनेक स्थानों पर अनेक अर्थों में किया जाता है। यह भाषा ही है जो आज के व्यक्ति के लिए कामधेनु की तरह अनवरत यथेच्छ फलदायी सिद्ध हो रही है। आदमी से आदमी को जोड़ने के लिए विज्ञान, व्यापार, तकनीक, कृषि इत्यादि असंख्य विषयों को और उन विषयों से सम्बन्द्ध व्यक्तियों को परस्पर सूत्रबद्ध करने

का काम भाषा द्वारा ही सम्पन्न हो रहा है। शब्द ब्रह्म की यह सर्वविदित रूप गरिमा है।

साध्य के अनुसार शब्द और शब्दावली का अक्षर और वर्णविन्यास का प्रयोग होता रहा है। संस्कृत साहित्य ने शब्द के अन्तस् को टटोलकर अपने वाक्य-विन्यासों की सीमा निश्चित की। यह सीमा अभिधा से प्रारम्भ होकर व्यंजना पर समाप्त होती है। यद्यपि मन्त्रशास्त्र अभिधा में लिखा गया है पर उसमें व्यन्जना वृत्ति नहीं हो—यह संभव नहीं है। हाँ, मन्त्र की व्यन्जना उसकी सिद्धि में, रहस्योद्घाटन में निहित है। यह शायद ऐसी व्यन्जना है जिसका प्रतिपादन—साधन—अवगाहन पथ प्रदर्शक ही कर सकता है। व्यन्जना जैसी वृत्ति का विवेचन करना मेरा अभीष्ट नहीं है, न ही उसका विवेचन इस विधा के लिए प्रासंगिक है किन्तु यह वृत्ति शब्द से उत्पन्न है इसलिए शब्द के साथ अनिवार्य रूप से जुड़ी हुई है, मन्त्र इससे भिन्न नहीं है।

अस्तु ! शब्द के स्फोट के स्थान योग शास्त्र ने बताये हैं। इन स्थानों को योग शास्त्रीय शब्दावली में कमल कहा गया है। उन कमलों का आकार-प्रकार और स्थिति मन्त्र शास्त्रीय विवेचन में यथा समय स्पष्ट कर दी जाएगी। उन कमलों का विज्ञान चेतन विज्ञान है इसलिए भौतिकवादी विज्ञान की परिसीमा में वह नहीं आ पाता इस दृष्टि से उसका इस प्रसंग में वर्णन भी युक्त प्रतीत नहीं होता।

प्रचलित सिनेमा के रागों की बात मैं नहीं करता पर पक्की राग-रागिनियों को गाने वाले कलाकारों की साधना का जिक्र किये बिना शब्द का गौरवपूर्ण विवेचन अपूर्ण रहेगा। अरब राष्ट्रों की अमर गायिका खलतुम का गला सम्पूर्ण राष्ट्र को आनन्द के सागर में निमज्जित कर देता है। तानसेन व सहगल का नाम आदर के साथ लेने वाले आज भी जीवित हैं, इनकी परम्परा चलती रहेगी। मान लेने योग्य बात है कि राग में गायक का कण्ठ एक तत्त्व होता है, राग की आरोह-अवरोह दूसरा। सामान्य रूप से जिस व्यक्ति के गले में लोच होता है वह अभ्यास करने पर राग-रागिनियों पर अधिकार प्राप्त कर

लेता है। अति मधुर स्वर दैवी वरदान हो सकता है पर अभ्यास सिद्ध पटुता भी अपने स्थान पर महनीय विशेषता होती है। जिन पक्की राग के गायकों के अलाप पर या स्वर साधने के क्रम से ही आज की पीढ़ी उकता जाती है उसे उन गायकों की साधना के महत्त्व का ज्ञान नहीं है। इन श्रोताओं से मेरा आग्रह है कि कभी वे पक्की राग के अनुभवी गायक से सुनें और यह अनुभव करें कि उनके बोल कहाँ से निकलते हैं। यह बात कोई बहुत बारीक या न समझ में आने लायक नहीं है, थोड़ा ध्यान देने पर ही यह भेद ज्ञात हो जाएगा। उन सिद्ध गायकों के कण्ठ से निकल रहा शब्द स्पष्ट रूप से ऐसा लगता है जैसे कण्ठ से नहीं कण्ठ के भीतर से निकल रहा है। वे शब्द कण्ठ में आने से पहले ही अपना रूप ग्रहण कर लेते हैं। इन स्थानों को शब्द शास्त्र ने वृत्ति का नाम दिया है। व्यक्त पाँच स्थानों से भिन्न होते हैं ये स्थान जिनको परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी वृत्ति का नाम दिया गया है। साधारण तौर पर अथवा सामान्य-सा प्रयत्न करने पर आदमी परावृत्ति तक रह पाता है, इससे अधिक प्रयत्न करने पर पश्यन्ती पर जाता है। सिद्ध गायक मध्यमा पर पहुँचता है और वैखरी वृत्ति योग साधना करने पर अथवा सावधान प्रयत्नों के फलस्वरूप गायक को भी सिद्ध हो जाती है। जिसका स्वर वैखरी वृत्ति से अनुप्राणित होता है या जिसके बोलने पर वैखरी प्रकट होती है वह शब्द के सचेतन अस्तित्व को पा लेता है और उसका शब्द अत्यन्त प्रभावशाली बनकर ही निकलता है।

शब्द शास्त्र की दृष्टि से परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी वृत्ति का परिचय देने से मेरा तात्पर्य यह था कि आज का विज्ञानवादी और शब्द की सचेतनता की अपेक्षा उसके कर्णगत रूप (आडिबल साउण्ड) में अधिक विश्वास करने वाला भौतिक-विज्ञानवादी इस तथ्य का परिचय प्राप्त कर ले कि उस अप्रतिम शक्ति का, शब्द का मूल उद्गम कहीं गहरे में है और विभिन्न अक्षरों के मूल को गुदा मूल से लेकर ऊर्ध्व शरीर तक विभाजित करने वाला योग शास्त्र सत्य भी है

और साथ ही व्यावहारिक भी।

आज गीत लहरियों के कारण पौधे अधिक बढ़ते हैं, गायें अधिक दूध देने लगती हैं इत्यादि निष्कर्ष शब्द के सामान्य प्रतिफलन हैं अन्यथा अतीन्द्रिय प्रभाव और अभौतिक परिणाम अत्यन्त आश्चर्यकारी हैं जिनपर शायद आज का विज्ञान विश्वास ही नहीं कर पाये। मल्हार से मेघों का आना, दीपक से दीपकों का जलना कोई कल्पना का वैभव नहीं है जिसने थोड़ा भी परिचय प्राप्त किया है, शब्द की विश्वास के साथ साधना की है उसके लिए ये बातें सहज ही अनुमान करने योग्य हैं। मैंने एक अंग्रेजी पुस्तक में पढ़ा था जिसमें किसी विदेशी ने प्रयोग किया था, जिसका सार यह था कि यदि किसी तश्तरी में भुरभुरी रेत को रख दिया जाय और साठ का कोण बनाते हुए कोई वाद्य यन्त्र रख दिया जाय (रेडियो या ग्रामोफोन जैसा) वाद्य यन्त्र में से किसी भारतीय राग की स्वर लहरियों को छोड़ा जाय तो थोड़े समय में उस कम्पन के कारण तश्तरी में आकृति उभरने लगेगी। संगीत की लहरी के कम्पन से स्वत: उस भुरभुरी रेत में एक व्यवस्थित प्रकार का रेखा-जाल बन जायगा। उन आकृतियों के चित्रों को देखकर मुझे अत्यन्त आश्चर्य हुआ क्योंकि वे आकृतियाँ वैसी ही रेखायें थी जिनसे राग-रागिनियों के स्वरूप निर्धारित होते हैं अथवा जो हमारे मन्त्र-शास्त्र के अधिष्ठाता देवताओं के स्वरूप हैं। उदाहरण के लिए—चतुर्भुज, अष्टभुजा आदि रूप में स्वस्तिक और षट्कोण जैसे तान्त्रिक आकारों में, भारतीय राग शास्त्र के लाक्षणिक ग्रन्थों में मैंने इन रागों के मानवीय चित्र देखे हैं। विदेशी के परीक्षण से प्राप्त आकृतियों में और भारतीय दिव्यचक्षुधर संगीताचार्यों द्वारा निर्मित चित्रों में मात्र इतना-सा अन्तर था कि वे रेखायें थी इनमें रंग और रेखाओं को सजीव मानवीय आकृति दे दी गई थी। हो सकता है (नहीं, है) भारतीय सचेतनावादी विज्ञान ने राग को सप्राण अनुभव किया था और उसे तूलिका से चित्रित कर दिया था अथवा शब्दों में चित्रित कर दिया था। यही एक कारण है कि भारतीय राग-रागिनियों का समय निर्धा-

रित है और जिन विख्यात संगीतज्ञों ने राग-रागिनियों की साधना में वर्षों अथक प्रयास किया है उनको अपने साधना काल में विचित्र अनुभव हुए हैं किन्तु वे अनुभव उनके अपने हैं, उनकी निजी धरोहर हैं। न वे अनुभवों को प्रकट करेंगे, न जमाना उनपर यकीन ही करेगा। कुछ वर्षों पहले विख्यात शहनाई वादक बिस्मिल्ला खाँ ने इस तरह के अनुभवों का हल्का-सा परिचय धर्मयुग में दिया था। ये अनुभव भौतिक-विज्ञान की सीमा में नहीं आते क्योंकि वह श्रव्य ध्वनि पर परीक्षण कर रहा है, आडिबल साउण्ड की ही शक्ति को थाह रहा है। शब्द के भीतर छुपे चेतनावान् अंश को नहीं परख रहा है।

साहित्य की अभिधा, लक्षणा, व्यंजना; शब्द शास्त्र की परा, पश्यन्ती मध्यमा, वैखरी वृत्तियों—छन्द शास्त्र के गणों के स्वरूप के साथ ही संगीत शास्त्र के षड़ज, मध्यम, गान्धार, सप्त, मध्यम, धैवत और निषाद स्वरों का अपना महत्त्व होता है। ये स्वर मात्र संगीत में, मानव के कण्ठ से उच्चरित ध्वनि रहित केवल वाद्य यन्त्रों में ही महत्त्वपूर्ण नहीं होते इनका महत्त्व मानवीय स्वरों में भी अक्षत है। संगीत शास्त्र के मृदु और कठोर वर्ण एवं उनका द्रुत और विलम्बित प्रयोग मन्त्रों के क्षेत्र में भी आदरणीय रहा है। वेद मन्त्र जिनका आज के युग में उपयोग निषिद्ध है वे उच्चारण में मध्यमा वैखरी आदि वृत्तियों के विषय भी हैं तो द्रुत और विलम्बित-पद्धति के भी विषय हैं। इस युग में वेद मन्त्रों का निषेध करने के पीछे एकमेव कारण यह है कि आज का व्यक्ति नितान्त व्यावहारिक अतएव इन्द्रियों की सीमा में विश्वास करने वाला रह गया है। इस बाह्यपरक जीवन से उसकी अन्तश्चेतना बहिर्मुख बनकर रह गई है और इसका प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से व्यक्ति के शरीर तन्त्र पर पड़ रहा है इस प्रभाव के कारण वेद मन्त्रों की शक्ति अविश्वसनीय बन गई है। समय के पार देखने वाले ऋषियों ने मानव के मानस पर पड़ने वाले प्रभावों को वर्षों पहले ही देख-अनुभव कर लिया था। इस क्रमिक ह्रास से परिचित ऋषियों ने वेदमन्त्रों के सत्य को समयानुकूल बनाने के लिए तन्त्र

शास्त्र का विस्तार किया और मन्त्र वैदिक स्तर से उतरकर तन्त्रों के स्तर पर आ गये पर इससे भी उन मन्त्रों का मूल सूत्र न उपेक्षित हुआ, न उसकी गुणात्मकता में ही कोई कमी आई।

वास्तव में आज का विज्ञान मन्त्र के बाह्य स्वरूप पर अश्रद्धा करना छोड़कर उसके मात्र बाह्य आकार; शब्द (स्वरूप) शरीर पर और ध्वनिगत आकार पर परीक्षण करने के साथ-साथ उसकी प्रतीकात्मकता पर और प्राणवत्ता पर भी श्रद्धा करके ज्ञात आधारों के सहारे अज्ञात रहस्यों की पर्तें उघारे तो बहुत बड़ा काम हो सकता है। हमारी आँखें जिस रूप में प्रकाश का प्रतिनिधित्व करती हैं, कान आकाश का प्रतीक हैं, त्वचा वायु का प्रतिनिधित्व करती है। उस प्रतीक-प्रतिनिधित्व की सचेतन अर्थवत्ता भी है जिसका आशय होता है—व्यक्ति का क्षुद्र अस्तित्व विराट् से जुड़ा हुआ है। परम शक्ति का प्रतिनिधित्व उनके पाँच फुट के शरीर में भी है। सामान्य-सी दिखने वाली इन्द्रियाँ व्यक्ति के लिए सेतु बन्ध का काम करती हैं जिससे विशाल नदी के यह और वह तट मिलते हैं।

शब्द की चमत्कारिता और प्रभुता का दूसरा दर्शन ज्योतिष शास्त्र में होता है। कुछ वर्ष पूर्व रूस के वैज्ञानिकों ने अनुभव-परीक्षण द्वारा प्रतिपादित किया था कि सूर्य में विस्फोट जैसे परिवर्तन होने से मानव के मन-मस्तिष्क पर प्रभाव पड़ता है। इस समय में दुर्घटनायें, आत्मघात, उन्माद जैसी स्थितियाँ व्यापक रूप से होती हैं। सूर्य के अलावा इतर ग्रहों की आन्तरिक स्थितियों में परिवर्तन होने का प्रभाव भी दूसरे पिण्डों पर और मानव जीवन पर पड़ता है जिसका विस्तृत अध्ययन करने का फल है ज्योतिष का गणित और फलित स्तम्भ। होता यह है कि इस संसार के समस्त पिण्ड चुम्बकीय शक्ति से एक-दूसरे से अनुस्यूत है और इनकी स्वयं की रश्मियाँ और प्रतिफलन से उत्पन्न रश्मियाँ ग्रहान्तरों के जीवन-संरचना को प्रभावित करती हैं। सूर्य के उपद्रवों का चुम्बकीय प्रभाव हमारे चुम्बकीय विद्युत् संस्थान को अतएव मन को प्रभावित करता है। ग्रहान्तरों से आने वाले

रश्मिजाल का प्रभाव हमारे विद्युत् शरीर पर पड़ता है इसलिए धार्षणिक शक्ति का केन्द्र शरीर पर क्षीण अथवा क्षमतावान् होता है। ग्रहों के विभिन्न प्रकार के परिवर्तनों एवं प्रभावों का विशद विवेचन ज्योतिष ने किया है।

इन बाह्य अन्तरिक्ष में गतिशील ग्रहों के प्रभाव से अप्रभावित रखने के लिए ऋषियों ने मन्त्र शास्त्र की छतरी आदमी के हाथ में उसी तरह पकड़ा दी है जिस तरह आज के विकसित राष्ट्र अणु छतरी का आधार गढ़ चुके हैं। ग्रहों के दुष्प्रभाव को रोकने के लिए गठित मन्त्रों का भाषा-शास्त्रीय अध्ययन रोचक एवं ज्ञानवर्धक है। ग्रह पीड़ा को शान्त करने वाली शब्दावली हमारे शरीर में चुम्बकीय तथा विकिरण सम्बन्धी प्रतिक्रियाओं को रोकने के लिए निरोधकारिणी ऊर्जा उत्पन्न करती है और उस विधि से बाह्य परिवर्तनों से हमारी रक्षा हो जाती है।

शब्द के गठन पर विचार करने के पश्चात् तथा शरीर में निहित वैद्युतिक एवं मानसिक शरीर का परिचय प्राप्त करने के अनन्तर उस शब्द किंवा ध्वनि की कार्यविधि का परिचय प्राप्त कर लेना सुविधाजनक रहेगा। भौतिक-विज्ञान यह मानता है कि शब्द अनुदैर्घ्य तरंगों में गमन करता है। ध्वनि चाहे व्यक्ति की श्रवणशक्ति की रेंज-परिसीमा में है या उससे न्यूनाधिक वह सर्प की गति की भाँति वर्तुलाकार पथ में गमन करती है। ध्वनि उत्पन्न होने पर ईथर में कम्पन होता है और वह ध्वनि कम्पन के कारण तरंगों में परिवर्तित होकर वातावरण में व्याप्त हो जाती है जैसे किसी सरोवर में कंकड़ डालने पर चारों ओर (उस स्थान पर जहाँ कंकड़ डाला गया था) तरंगें उठती हैं और गतिशील हो जाती हैं। ठीक ऐसा ही ध्वनि का स्वरूप और स्वभाव है। वह भी अनुदैर्घ्य तरंगों के रूप में वातावरण में इतस्ततः प्रसरित हो जाती है। इसके सामानन्तर विद्युत् भी तरंगों में गमन करती है किन्तु विद्युत् गति अवरोध पूर्वक होती है अर्थात् रेजिस्टैंस युक्त होकर विद्युत् का प्रवाह प्रसारित होता है। हमारे शब्द की

लहरों को व्यक्ति विशेष अथवा दिशा विशेष के प्रति प्रेषित करना मानसिक चुम्बकीय विद्युत् का कार्य होता है। मन की यह चुम्बकीय प्रभावशीलता आस्था, विश्वास, संकल्प, इच्छा शक्ति आदि विविध नामों से कही-जानी जाती है। शब्द के साथ जुड़ी हुई मन की भावना और शब्दावली का अर्थ जब ध्वनि (चाहे वह आडिबल है या मानसिक प्रतीति मात्र है) के साथ एकाकार हो जाता है तो उसका प्रत्यक्ष चमत्कार दिखने लगता है।

शब्द के गमन की दो स्थितियाँ होती हैं, पहली अनुदैर्ध्य तरंगों के रूप में और दूसरी अनुप्रस्थ तरंगों के रूप में। किसी तालाब में पत्थर डालने पर चक्राकार तरंगें उठने और दिशा विशेष में तरंगों को गतिशील करने की विधियाँ आज भौतिक-विज्ञान ने जान ली हैं। सामाजिक शान्ति के लिए किए जाने वाले प्रयोगों में शब्द लहरियाँ उसी वर्तुलाकार रूप में गमन करती हैं उद्देश्य विशेष में उसकी गति अनुदैर्ध्य तरंगों का रूप ग्रहण कर लेती है। ये स्वर लहरियाँ ताप की गति के अनुसार एक-दूसरे से संक्रमण नहीं करतीं बल्कि वर्तुल रेखाओं के रूप में सूक्ष्मतम माध्यम से गमन कर सकती हैं। इन तरंगों का माध्यम कोई भी हो निश्चित स्थान पर पहुँच कर ये कार्य रूप में व्यक्त होती हैं।

शब्द की ~~~~ इस रूप में गमन करने वाली तरंगें जब ~~~ इस रूप में गमन करने वाली बिजली की तरंगों के साथ गमन करती हैं तो एकरूप हो जाती हैं। बिजली की शक्ति से छोड़ी जाने वाली तरंगों में रूप में शब्दावली या स्वर लहरी के लिए सारा संसार हाथ में रखे आमले की तरह सरलतापूर्वक जानने योग्य बन जाता है। बिजली शक्ति के कारण ही वायरलैस उपयोगी बना हुआ है वर्ना शब्द ध्वनि का रूप ग्रहण करते ही अधर में टंग जाता।

आज भी अनन्त अन्तरिक्ष में नाना प्रकार की ध्वनियाँ इकट्ठी हैं और होती रहेंगी। वैज्ञानिक आकाश में फैली इन ध्वनियों को पकड़ करके विलुप्त इतिहास को प्रमाणयुक्त करके प्रस्तुत करना चाहते हैं।

सुनने में आया था कि जर्मनी के वैज्ञानिकों ने आकाश में व्याप्त इन ध्वनियों को ग्रहण करने की कोशिश की थी किन्तु वे क्रमबद्ध नहीं थी। इस परीक्षण का कोई आधार रहा था या नहीं रहा था—इतना तो माना ही जा सकता है कि जब ध्वनि नष्ट नहीं होती तो उसे असल रूप में परिवर्तित किया जा सकता है।

मन्त्र की ध्वनि के पीछे भी विद्युत् शक्ति रहती है, उस शब्दावली के साथ चेतना वाले व्यक्ति की भावना का प्रवाह जुड़ा रहता है। इसलिए मन्त्र के ध्वनिरत रूप की शक्ति से गुणित होने का सूत्र सिद्ध हो जाता है। जहाँ शक्ति है वहाँ क्रियात्मक रूप मिलने में विलंब नहीं होता। मन्त्र का ध्वनि पक्ष भी इस रूप में गढ़ा गया है कि वह इस विशाल संसार के स्थूल पदार्थों के साथ प्रभावशाली रूप से जुड़ा है। बिना शक्ति के मन्त्र तो दूर की बात है भाषा के सामान्य शब्द ही अपना प्रभाव छोड़ बैठते हैं।

अभ्यास यह सिद्ध कर देता कि कालान्तर में ध्वनि की वर्तुल एवं अनुदैर्ध्य तरंगों के स्थान को मानसिक भावना की विद्युत् पूर्ण कर देती है और मन्त्र कार्यक्षम हो जाता है। यद्यपि मन्त्र के साथ स्फोट अथवा ध्वनि के रूप में शब्द जुड़ा है तथा साधक से यह अपेक्षा की जाती है कि वह शब्द के साथ शब्द के अर्थ को, प्रतीक को, पूरी निष्ठा के साथ विचारगत रखेगा फिर भी व्यावहारिक दृष्टि से यह दुष्कर है। हमारी इन्द्रियों का और इन्द्रियों के अधिष्ठाता मन का यह स्वभाव है कि किसी भी वस्तु के अभ्यास होने पर उसका बोध क्षीण हो जाता है। इन्द्रियाँ उसको अभ्यास बोध के कारण स्वभाव मान लेती हैं, उससे उत्तेजना और प्रेरणा नहीं मिल पाती। कोई व्यक्ति सिगरेट पीने का आदि हो जाता है तो उसे सिगरेट की गन्ध का अनुबव नहीं होता है। नासिका के लिए वह गन्ध इतनी परिचित हो जाती है कि न उसका बोध होता है, न उससे कोई उत्तेजना होती है। इन्द्रियाँ आज्ञाकारी दास की भाँति उस अभ्यास को सम्पूर्ण करती रहती हैं। यह यान्त्रिक क्रिया कभी-कभी बड़ी नीरस लगने लगती है। नीरस

लगने का कारण यह भी होता है कि शरीर उस अभ्यास में नियुक्त हो जाता है और दूसरे दोनों शरीर अपने-अपने काम में लगे रहते हैं। इस बिन्दु पर साधक को साधना निष्प्राण लगने लगती है, शब्द मात्र इन्द्रियों की निष्प्राण यान्त्रिक क्रिया बन जाता है। मन जब वाग् इन्द्रिय को मन्त्र की शब्दावली सौंपकर निश्चिन्त हो जाता है तो साधना से विमुखता आ जाती है। साधक मन की सूक्ष्मता का और चंचलता का परिचय प्राप्त करता है। प्रतिक्षण मन को मन की भावना के साथ जोड़ने की चेष्टा करता है और मन हाथ से निकलता-सा लगता है।

साधना का यह स्थल ऊहापोह का होता है। शरीर और मन दोनों की भिन्न-भिन्न स्थितियाँ स्पष्ट हो जाती हैं पर यह बिन्दु सांसारिक विचारधारा में उलझे-फँसे आदमियों के लिए आवश्यक होकर भी चिन्ता का नहीं होता। यह विरुचि ज्वार का परावर्तित रूप है और सागर में ज्वार भी आता है तो भाटा भी। दरअसल ज्वार भी सागर है तो भाटा भी सागर का ही रूप-प्रकृति है। मन के मन्त्र से सम्पृक्त होने तथा वियुक्त होने से सिद्धि की अथवा मन्त्र की शक्ति उग्र या क्षीण नहीं हुआ करती। यह प्रक्रिया प्राणवान् शब्द को स्थूल जगत् से ऊपर उठाकर व्यक्ति की नियामक शक्ति से जोड़ने की साधना है। शब्द की स्थूल शक्ति में प्राण प्रतिष्ठा करके उसे जागृत करने का मानसिक प्रकार है। साधना के क्रम में व्यक्ति कई प्रकार के अनुभवों में से गुजरता है। मन्त्र को सप्राण करने की चेष्टा में साधक को कई प्रकार की प्रतीतियाँ होती हैं। ये सारी प्रतीतियाँ व्यक्ति की स्वकल्पित ही नहीं होतीं कई-कई अणु के मन्त्र से एक रूप होने की प्रासंगिक घटना होती हैं।

यद्यपि आडिबल साउण्ड मन्त्र शास्त्र की दृष्टि से तीसरी श्रेणी की शक्ति होती है और अधुनातन विज्ञान भी उसे कोई महत्त्व नहीं देता पर भावना मूलक मानसिक विद्युत् के तथा ध्वनिपरक शारीरिक, धार्षणिक विद्युत् के अस्तित्व से इन्कार नहीं किया जा सकता। शब्द का स्फोट, शब्द की लय और शब्द की अर्थवत्ता भी अपने स्थान पर

पूर्ण शक्ति सम्पन्न एवं सार्थक तत्त्व हैं इनके प्रभाव से अस्वीकार भी किसीको नहीं हो सकता। मन शब्द के साथ, शब्द की प्रतीति के साथ जुड़ता है तो सिद्धि की अलौकिक अनुभूति भी व्यक्ति को निहाल करती रहती है।

यथार्थ में मन्त्र में किंवा शब्द में दो स्वरूप, दो शरीर, दो गुण होते हैं। मन्त्र की प्रतीकता, शब्द की प्रतीक बोधकता बुद्धि का विषय होता है और उसकी लय हमारे शरीर अथवा बाह्य जगत् में उत्तेजना लाती है। इस तथ्य को हम एक उदाहरण से समझ सकते हैं। मान लीजिए हम स्टेज पर एक नाटक देख रहे हैं जो किसी अफ्रीकी देश के वातावरण में लिखा गया है। अफ्रीका देश का वातावरण हमारे लिए अनुभवगम्य नहीं है इसलिए हम उसकी यथार्थ कल्पना नहीं कर पाते। पर उसकी भाषा हमारी भाषा है अर्थात् उस नाटक का हिन्दी में रूपान्तरित करके हमारे सामने पेश किया जा रहा है। भारतीय दर्शक की बुद्धि प्रतीकों का सामञ्जस्य कर देगी, कथा के सूत्र को जोड़े रहेगी पर उसके प्रभावों को प्रकट करना प्रतीकों की अर्थबोधक शक्ति से परे की बात है। हमारे मन पर प्रभाव पड़ता है। हम हर्ष, शोक की अनुभूति करते हैं उसकी लय के कारण। लय की यह प्रभावशीलता भाषा के शब्दों से रहित केवल यन्त्रों की ध्वनि से भी प्रतीत होती है। युद्ध के लिए प्रमाण करते समय अथवा किसीकी शव-यात्रा के समय किसी भी देश का, कोई भी यन्त्र बज रहा हो उसकी लय विश्व जनीन सत्य है, लय का प्रभाव अन्तर्राष्ट्रीय समानता है। यदि कोई लय सामयिक, किंवा जिस अवसर को ध्वनि के सहारे व्यक्त करने में समर्थ नहीं है तो इसका कारण यही हो सकता है कि उस लय की आत्मा को नहीं टटोला गया है। शव-यात्रा के समय बजाये जाने वाले वाद्य यन्त्रों की लय यदि विवाह के अवसर जैसा अनुभव कराती है तो यह उस लय के आविष्कर्ता की कमी है। लय के सार्वकालिक एवं सार्वदेशिक सत्य से किसीको मतभेद नहीं हो सकता।

एक पुस्तक का दूसरी भाषा में अनुवाद करने पर कई बार अनु-

बाद मूल पुस्तक से श्रेष्ठ बन पड़ता है तो कई बार उससे कम हो जाता है। यह मानने लायक तथ्य है कि देशीय अनुभव से उत्पन्न प्रतिनिधि शब्दों की अर्थगत एकरूपता वाले शब्द दूसरी भाषाओं में मिलना संभव नहीं होता। पर उन प्रतीकों को यथावस्तु अथवा तत्सम रूपों में व्यक्त करने की क्षमता हरेक भाषा में होती है। इस क्षमता के बावजूद भी अनुवाद का श्रेष्ठतर होने अथवा न्यूनतर होने का कारण यही है कि अनुवाद के लिए जिस शब्दावली का प्रयोग किया गया था। उसकी लय में प्रभावशाली उत्तेजक शक्ति का समावेश नहीं हो पाया। शब्द के साथ लय अनिवार्य रूप से जुड़ी रहती है। इस लय का व्याघात वर्ण का रूप ग्रहण करने पर भी नहीं होता। अर्थात् केवल कानों से सुनने पर ही उत्तेजना नहीं होती। मुद्रित पुस्तकों के एकान्तिक पठन से भी व्यक्ति प्रभावित होता है क्योंकि उस भाषा के साथ शब्द जुड़े हुए हैं और शब्दों के साथ उनकी लय जुड़ी रहती है। भाषा के गठन में तत्त्व जगत् के गुण, परिणाम, आकार, आयामों का दृष्टिकोण मूलरूप में रहा था पर उनको व्यक्ति की उत्तेजक शक्ति का उद्दीपन करने के लिए लय का रूप ग्रहण करना ही पड़ा। बिना लय के शब्द ब्रह्म की आकार-प्रकार मय अभिव्यक्ति-अनुभूति हो ही नहीं सकती।

लय बोध भाषा का प्राण है। श्रेष्ठ लेखक तत्सम शब्दावली में लिखें या हिन्दुस्तानी में अथवा अंग्रेज़ी बहुल भाषा में, पाठक उससे प्रभावित होता ही है। पण्डितों की भाषा ही प्रभावशाली होती हो—यह कोई अनुबन्ध नहीं होता। वास्तविक रहस्य है अनुकूल लय वाली शब्दावली। सिद्ध लेखक के मुख से या कलम से जो भी कुछ व्यक्त होगा वह उसकी निजी शैली होगा और इस शैली का प्राण होगी व्यक्ति की मानसिक जागरूकता जो बुद्धि के सहारे शब्द प्रतीकों को जोड़ती हुई इस प्रकार के वाक्यों, अनुच्छेदों का सृजन करेगी जिसमें पूर्ण प्रभावशालिता होगी। समर्थ रचनाकार की भाषा पूर्वाग्रह से मुक्त होकर भी और मुक्त रहकर भी लय की सार्थकता को थामें रहेगी। यह सूक्ष्म प्रक्रिया होती है जिसे शायद लेखक जानता है और अनुभव करता है

अथवा जानता नहीं है पर अनुभव करता है।

मैं सिद्धान्ततः मन्त्र के साथ मन की एकाग्रता या मन्त्रनिष्ठता को स्वीकार करता हूँ, विश्वास को मन्त्र की शर्त मानता हूँ पर विश्वास ही सब कुछ होता है इस बात को व्यावहारिक आधार पर मानने के लिए प्रतिबद्ध नहीं हूँ।

मन्त्र के जप में देह, पुद्गल व मानस तीनों एक रेखावस्थित रहें—यह शुभ लक्षण है, शीघ्र सिद्धिकर है पर बलवान् पुरुषार्थ से भाग्य को पराजित होते भी देखा है। कोई व्यक्ति मन्त्र की साधना कर रहा है किन्तु उसे मन्त्र के प्रति उतनी आस्था नहीं है जितनी चाहिए (विरोध भावना से काम नहीं चलेगा)। ऐसी स्थिति में मन्त्र का जप निष्फल चला जाएगा—यह बात व्यवहार सिद्ध नहीं है (शास्त्र सम्मत् भी नहीं है)।

अर्थ भावना छूट जाती है या छूटती रहती है तो भी कोई आपत्ति नहीं होती। शरीर के अवयव, स्फोट के स्थान मन्त्र के अभ्यास में निरत रहते हैं तो मन्त्र का साध्य व्यक्ति को मिलकर रहेगा। निरन्तर जप से मन्त्र की लय, मन्त्र की शब्दावली अपना काम करेगी। आज हम किसी मन्त्र के जप का व्रत लेते हैं, निश्चित मात्रा में—नियमित समय पर उसका जप करते हैं तो यह मानने लायक बात है कि उस मन्त्र की सिद्धि होकर रहेगी लेकिन इस प्रक्रिया में होगा यह कि मन्त्र के जप से हमारा दैहिक अभ्यास वैद्युतिक शरीर को प्रभावित करेगा और फिर मानसिक शरीर को तदनुरूप बना डालेगा। व्यवहार एवं प्रयोग के आधार पर मुझे यह कहने में जरा भी दुविधा नहीं है कि मन्त्र का जप व्यक्ति के मन को निर्मल करके रहेगा, मन की संवेदनशीलता को उग्र करके रहेगा। साधक का वैद्युतिक शरीर उसके नियम-नियन्त्रण में रहने योग्य बन जायगा।

मन्त्र के पुरश्चरण में व साधन में जपों की मात्रा निश्चित करने के पीछे भी यही सिद्धान्त रहा है। यथार्थ में जपों की संख्या मध्यममान है, अन्तिम सत्य नहीं। व्यक्ति के शरीर (देह, पुद्गल,

मानस) तन्त्र की स्वच्छता, आहार-विहार का संयम, विचार-व्यवहार की उत्तमता तथा संस्कार आदि सहयोगी परिस्थितियाँ अनुकूल रहती हैं तो मन्त्र की संख्या से कम जप से ही सिद्धि हो जाती है। व्यक्ति के तीनों देहों का सन्तुलन मन्त्र के लिए सर्वाधिक अनुकूल स्थिति है। मात्र इच्छा शक्ति, शब्द, श्रद्धा जैसे तथ्य स्वतन्त्र रूप से कार्य कर सकते हैं किन्तु इनमें अन्य अंगों का सामर्थ्य लाने के लिए प्रयास करना पड़ता है। केवल भावना से कार्य होता तो शब्द की आवश्यकता नहीं होती, तराजू और दो किलो का जप करने का विधान होता। मन्त्र का सूत्र केवल भावना और विश्वास रहता, शब्दों का आधार आवश्यक नहीं होता पर ऐसा संभव नहीं था। शब्द और प्रतीक, भावना और प्रयत्न इनका संयोजन ही शीघ्रतम सिद्धिदाता हो सकता है, स्थायी समाधान हो सकता है। मन्त्र के निरन्तर जप में शक्ति की प्रतिष्ठा की जाती है। जप का अभ्यास होने पर वह ऐन्द्रिय व्यायाम हो जाता है, मन के लिए उसकी प्रतीक भावना और अर्थवत्ता क्षीण हो जाती है किन्तु उस ध्वनि के नैरन्तर्य के कारण व्यक्ति तन्मय हो जाता है। जिह्वा का अभ्यास मानसिक शरीर तक पहुँच जाता है। अतः यह मानने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि मन्त्र के जप में प्रयुक्त ध्वनि की निश्चित आवृत्ति स्थूल जगत् के लिए नियामक शक्ति है। चीन की कहावत है—'झूठ को तब तक दोहराते रहो जब तक वह सत्य नहीं हो जाय।' उक्त कहावत में व्यवहार बल है, आवृत्ति के कारण स्थापित शक्ति है। मन्त्र में स्वयं में भी सामर्थ्य होती है। यह किंवदन्ती सत्य हो या न हो, कि बाल्मीकि व्याध थे और मारा-मारा कहने से उनकी प्रतिभा का उन्मेष हो गया। इस किंवदन्ती का रहस्य यह अवश्य है कि भाषा की विशेष शब्दावली का विशेष प्रभाव होता है और उसके जप का परिणाम भी विशिष्ट ही निकलता है।

मन्त्र की आधुनिक अवस्था

मन्त्र की शास्त्रीय व्याख्या करने के लिए हमें भारत के अतीत में चलना होगा। भारतीय ऋषियों के चिन्तन ने सृष्टि का रहस्य पा लिया था—इस तथ्य में सन्देह को कोई अवकाश नहीं है। आज हमारा प्राचीन साहित्य मिल नहीं रहा है। जो उपलब्ध है वह भी आधुनिक शिक्षा, सभ्यता एवं तथाकथित वैज्ञानिक दृष्टिकोण की उपेक्षा का शिकार होता जा रहा है इसलिए उसके अधिक समय तक जीवित रहने की ही, आशा नहीं है, विकसित होने की—जीवनीय बनने की तो बात ही क्या।

सच तो यह है कि हमारा ज्ञान कर्ण परम्परा से चलता था। गुरु अपने ज्ञान को शिष्य को याद करा दिया करता था और शिष्य अपने शिष्य को। वेद को श्रुति कहने का और मनु की अथवा याज्ञवल्यक, पराशर आदि की सामाजिक व्यवस्थाओं को स्मृति कहने का कारण भी यही है कि ये श्रवण-स्मरण से पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलती रही थीं। इस सनातन रूप से चल रही ज्ञान की वैतरणी में हरेक विचारक ने अपनी ओर से भी जोड़ा पर अपना नाम जोड़ने के मोह से दूर रहा—यही आधार आज इस युक्ति के लिए प्रमाण बन रहा है कि व्यास एक ऋषि अवश्य थे पर उनकी शैली अधिक व्यापक थी। व्यास के नाम पर प्रचलित ज्ञान सरिता में हर पीढ़ी ने हर मनस्वी विचारक ने योगदान किया

और व्यास को समर्पित कर दिया। यह ठीक ऐसा ही रहा जैसे हिमालय से चल रही पतली-सी धारा को सागर में मिलने तक मिलने वाली असंख्य जलधाराओं ने विशाल विपुल बना दिया पर नाम उसका गंगा हो रहा। कर्ण परम्परा से आ रहे ज्ञान रूपी ब्रह्म-नद का प्रवाह मुद्रण कला के विकास के साथ क्षीण महत्त्व का हो गया। वर्षों पहले ऐसे व्यक्ति जिनको कई ग्रन्थ याद थे पर न उनको लिपिबद्ध किया गया न प्रकाशित किया गया और वह उनके साथ ही सदा-सर्वदा के लिये चला गया। जो ज्ञान लिपिबद्ध कर लिया गया था उसका भी विनाश बहुत बड़ी मात्रा में हुआ। विदेशी आक्रान्ताओं ने बड़ी निर्ममता पूर्वक अमूल्य ज्ञान-राशि की होली खेली, अथवा मूर्ख वंशधरों के कारण दीमक-चूहों का भोजन बन गया था अर्थलोभी उत्तराधिकारियों ने उसे अर्थलाभ का साधन समझ कर लोगों-कसाइयों—के हाथ बेच दिया। विदेशों में आज भी भारत के अमूल्य ग्रन्थ सुरक्षित या स्वरक्षित हैं। इसके साथ ही यह भी एक माननीय तथ्य रहा है कि भारतीय मनोवृत्ति से किसी भी ज्ञान की परम्परा बनाने की अपेक्षा पात्र-कुपात्र का दृष्टिकोण अधिक कट्टरता के साथ अपनाया। पात्रता का विचार यद्यपि शास्त्रीय और व्यावहारिक दृष्टि से आवश्यक होता है फिर भी यह मानने लायक नहीं कि इतने बड़े देश में पात्रों की कमी रही हो।

रहस्य के ज्ञाता व्यक्तियों की क्षुद्र भावना ने शास्त्रों को ही अविश्वास एवं अव्यवहार का शिकार बना दिया। जहाँ परम्परा बनाकर उस विषय को जीवनदान देना चाहिए था, नवीकरण करना चाहिए था, विकसित होने देना चाहिए था, लोकहित को समर्पित कर देना चाहिए था, वहाँ ममत्व के वशीभूत होकर पात्र को देने में भी कृपणता दिखाई जिसका फलितार्थ हुआ—ज्ञान की सरिता अन्तःसलिला हो गई। आज की पीढ़ी के पश्चात्य प्रेमी होने का दोष ऐसी मनोवृत्ति वाली परम्परा को ही दिया जा सकता है अन्यथा हमारे प्रयोग ही व्यवहार से पोषित रहते तो भारत ही नहीं समस्त विश्व ज्ञान का सम्मान करता और भौतिकवादी जड़ विज्ञान आत्मवादी चेतन विज्ञान के

साथ जुड़ा रहता तथा आज की यह व्यापक विसंगति केवल अनुमान का विषय बनी रहती।

आज मन्त्र को शास्त्रीय स्तर से उतरकर अविश्वास की भूमि पर नहीं खड़ा होना पड़ता, वह हिमाचल के अपार विस्तार और अभ्रंकष उच्चता के साथ नमस्करणीय रहता तो आज की भारतीय पीढ़ी को इस विषय के समझने-समझाने के लिए इतनी कठिनता नहीं होती।

मन्त्र चूँकि भारतीय विज्ञान है, इसलिए इसके मूल से लेकर विन्यास-विपाक तक भारतीय संस्कार, लोच-लहजा और विधि-साधना भारतीय वातावरण के ही प्रतीक होंगे। भारतीय आधार पर मन्त्र शास्त्र का ज्ञान करने के लिए हमारे पूर्व पुरुषों ने जो दिशा दर्शाई है वह आज की पीढ़ी के लिए भी अनिवार्य है, अतः ऋषियों के वचनों, आदेशों, अनुदेशों का विवरण विषय की सम्पूर्णता के लिए उपादेय सिद्ध होगा। संस्कृत देववाणी है और मन्त्रों का निर्माण इसी भाषा में किया गया है। संस्कृत के सुर भारती होने का प्रमुख कारण है इसकी सार्थकता। विश्व की कोई भी भाषा इतनी सक्षम नहीं है कि उसमें प्रतीक के तीनों आयाम मुखर हो जाते हों। संस्कृत इस दृष्टि से समृद्धतम और सर्वाधिक क्षमता सम्पन्न है। संस्कृत का प्रत्येक शब्द अपने आपमें जीवन्त प्रतीक है, मुखर अस्तित्व है। संस्कृत शब्दों का अर्थ स्वतः प्रमाण है, यौगिक अथवा व्याकरण सिद्ध शब्दों का अर्थ उनके विश्लेषण एवं व्युत्पत्ति से स्पष्ट हो जाता है। मन्त्र शब्द का तात्त्विक अर्थ जान लेने से रहस्योद्‌घाटन हो जाएगा इसलिए सर्वप्रथम हम यह जान लें कि मन्त्र शब्द की रचना किस प्रकार हुई।

मन्त्र क्या है?—मन्त्र शब्द मन्त्रि गुप्त भाषणे धातु से घञ् प्रत्यय द्वारा निष्पन्न होता है। मन्त्र शब्द अच् प्रत्यय से भी सिद्ध होता है पर उसका अर्थ होता है सलाह। इस मन्त्र का अर्थ होता है रहस्य, वह रहस्य जो विवेचित है पर अनुभव का विषय है और जिसे सार्वजनिक रूप से व्यवहार का विषय नहीं बनाया जाता। आजतक का युग मन्त्रपद प्राप्त शब्दावली को न गीत के रूप में गेय बना सका, न संभाषण के लिए मुहावरा जैसा रूप दे सका, क्योंकि मन्त्र सदा से

गोप्य रहा है। मन्त्र के लिए गोपन पहली शर्त है जिसे प्रत्येक शास्त्रकार दोहराता है।

तांत्रिक परिभाषा—तन्त्र शास्त्र के अनुसार मन्त्र वह शब्दावली है—जो किसी देवता को प्रसन्न करने के लिए जप का विषय बनती है। मुख्यतः मन्त्र व्यक्ति की शक्ति का उद्दीपन करते हैं अथवा किसी गुरुतर शक्ति से याचना करते हैं। स्वयं व्यक्ति की शक्ति के जागरण से अथवा विश्व की नियामक शक्तियों के प्रति आस्था व्यक्त करने से जप या मन्त्र का साध्य स्पष्ट हो जाता है। मनु महाराज इस शास्त्र के लिए कहते हैं कि जिसका गर्भाधान से लेकर श्मशान तक का संस्कार मन्त्रों से होता है वही मन्त्र का अधिकारी है। यह बात उस ज़माने की है जब वर्ण-व्यवस्था बड़ी कड़ाई के साथ लागू थी। समय की परिवर्तनशीलता के कारण आज इस तथ्य में उतना बल नहीं रह गया फिर भी शास्त्रीय मर्यादा के रूप में यह पालनीय अवश्य है। इस मर्यादा के कारण द्विज से इतर जातियों के लिए मन्त्र उपयोगी नहीं हैं—यह बात नहीं है। सिद्ध सम्प्रदाय ने, शक्ति की उपासना करने वाले वाम-मार्गियों ने तथा तन्त्र शास्त्रज्ञों ने ऐसे सरल-सुगम रूपमें मन्त्र शास्त्र को वर्ण मर्यादा से ऊपर उठाकर सर्वजनोपयोगी रूप दे दिया है कि यह विषय किसी वर्ग विशेष के लिए ही साधना—अनुभव का विषय नहीं रहा। उन उदारचेता स्वनाम धन्य पवित्रात्माओं को शत-शत प्रणाम हैं। मन्त्र, तन्त्र और यन्त्र तात्त्विक रूप से भिन्न वस्तु नहीं हैं बल्कि एक ही सत्य के तीन प्रकार हैं, एक शक्ति के तीन रूप हैं। मन्त्र का चित्रात्मक रूप यन्त्र है तो मन्त्र के भौतिक उपकरणों का अनुपान एवं स्थूल-पदार्थाश्रयता तन्त्र है। बहुत वर्षों पहले एक व्यक्ति ने विश्व की विभिन्न भाषाओं के अक्षरों का खोखला ढाँचा बनाकर उनको बजाया। प्रयोग का फल आश्चर्यजनक था, केवल देवनागरी लिपि के अक्षरों से निकलने वाली ध्वनि ही उन अक्षरों के वाचिक उच्चारण जैसी थी शेष किसी भी भाषा के वर्णों में यह विशेषता नहीं थी। भाषा के इस सत्य का सचित्र वर्णन यदि यन्त्र शास्त्र करता

8152

है तो यह न अवैज्ञानिक है न निराधार। मन्त्र जो कार्य ध्वनि के और भावना के माध्यम से करता है वही तन्त्रों में औषधों व इतर द्रव्यों से सम्पन्न हो सकता है और यन्त्रों की सचित्रता से, रेखांकन से हो जाता है। किसी व्यक्ति को कोई बात समझ में न आये तो चित्र द्वारा और माडल्स द्वारा समझाने की विधि आज भी व्यवहार में है। औषधियाँ देह की व्याधियों में काम करती हैं, वे ही जब सूक्ष्म शरीर पर प्रभाव डालने के लिए काम में लाई जाती हैं तो वशीकरण अथवा उच्चाटन जैसा काम करती हैं। यह उन पदार्थों के उपयोग और विधि का परिणाम है।

मन्त्र और देवता—मीमांसा दर्शन के अनुसार मन्त्र देवता का ही स्वरूप है। जिस देवता का जो मन्त्र है वही उसका स्वरूप है। मन्त्र से पृथक् देवता का अस्तित्व नहीं है। ऐसा आजतक किसी शास्त्र में देखने-सुनने को नहीं मिला कि देवता हो और मन्त्र नहीं हो। प्रथम अध्याय में मिट्टी की तश्तरी पर संगीत लहरियों के उभरने के प्रयोग से मीमांसा दर्शन की उक्त स्थापना की पुष्टि हो जाती है। मन्त्र की शब्दावली का यान्त्रिक आधार पर बनाया गया चित्र तत्-तत् देवता का भौतिक आकार है। एक ही सागर का जल तत्त्व भिन्न-भिन्न स्थानों और पदार्थों में जाकर विविध रूप ग्रहण कर लेता है। समस्त संसार के शक्ति के रूप में व्याप्त परम सत्ता कार्याश्रयी देवताओं के रूप में अनेकरूपा हो जाती है। शंकर एक ही शक्ति का नाम है पर स्थान भेद से रूद्र का स्वरूप भी वही बन जाता है। स्थान एवं उद्देश्य भेद से पराशक्ति की विविध रूपों में उपासना की जाती है। यहीं से बहुदेववाद की विचारधारा जन्म लेती है किन्तु इससे परमेश्वर की सत्ता या स्वरूप पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि प्रतीकों के रूप में स्थान भेद से कल्पित वह तत्त्व परमार्थतः एक है विभु है। स्तुति करने के विशेषण देवता का स्वरूप नहीं हो सकते, उनको मन्त्रों का स्तर नहीं दिया जाता। मन्त्र स्वतन्त्र और पूर्ण वस्तु हैं, उनसे भिन्न स्वरूप का देवता अस्तित्व में नहीं हैं। इसी दृष्टिकोण से आह्निक

तत्त्व कहता है— मनन से त्राण करता है इसलिए मन्त्र कहा जाता है। मन्त्र की यह व्युत्पत्ति मीमांसा दर्शन के अधिक निकट पड़ती है।

मीमांसा दर्शन के अनुसार देवता मन्त्र ही होता है अथवा मन्त्र ही देवता होता है। आराध्य देवता की पूजा मन्त्र के पाठ से ही संभव है, स्तुति गीत से नहीं। स्तुति तो देवता के प्रतीक का खण्ड ज्ञान होगी, मन्त्र सम्पूर्ण ज्ञान होगा। वेद इसीलिये पृथक-पृथक देवताओं के भिन्न-भिन्न मन्त्र बतलाता है।

मन्त्र भौतिक सिद्धि और मोक्षप्रद है—भारतीय ऋषियों ने संसार को दुःख का आगार माना है। मायामोह को संसार सागर का आवर्त माना है। सारे प्राणिजात इस आवर्त में फँस रहे हैं। हर सुख दुःखान्तिक सिद्ध होता है। इन्द्रियों के सुखदायी, मन के रुचिकर, संस्पर्शजनित भोगों का विपाक हमेशा दुःखयोनि रहता है। ममता, अहंकार, लोभ, ईर्ष्या, घृणा, प्रेम, आसक्ति आदि सारी भावनायें ही संसार हैं और इनकी प्रतीति-प्रीति व्यक्ति को बाँध लेती है। मकड़ी की तरह व्यक्ति अपने ही जाल में कैद रहना पसन्द करता है। जीवन, मरण को निश्चित करता है और मरण, जीवन का विश्वास दिलाता है। भारत की यह खोज समस्त संसार के रहस्य का पर्दा उठा देती है। व्यक्ति उस स्थिति को पाने की लालसा रखने लगता है, जो बन्धन नहीं मुक्ति है, जड़ नहीं चेतन है, तमस् नहीं ज्योति है। सांसारिक चक्र में फँसे जीव पर तरस खाकर भारतीय ऋषियों ने पराशक्ति की उपासना की विधि बताई है गुणातीत परब्रह्म का कोई विग्रह नहीं हो सकता, इसलिये उस विभु का शब्द के रूप में साक्षात् करने का उपाय विश्व को बतलाया है। भगवान् के परब्रह्म के अर्चन का प्रकार विभिन्न शास्त्रों में विविध रूपों में बताया गया है पर शब्द ब्रह्म के रूप में वह अनेकत्त्व में भी एकत्त्व के रूप में ही प्रति स्थापित है।

वेदान्त जैसे शास्त्रों में सांसारिक दुःखों से त्राण पाने के लिये निर्गुणोपासना एवं ज्ञानयोग के उपाय बताये गये हैं। उपासना की प्रतीकहीन प्रणालियों द्वारा आत्मदर्शन संभव हो सकता है, किन्तु वह श्रवण-

मनन-निदिध्यासन का प्रयोग सांसारिक जाल में फँसे दुर्बल व्यक्ति के लिये दुष्कर रहता है। हर व्यक्ति में सांसारिक आसक्ति और जीवन का यथार्थ बोध इतना प्रबल होता है कि वह अपूर्व की उपासना करने में अपने आपको अक्षम मानता है और ऐसा मानना अव्यावहारिक भी नहीं है। दुर्बल व्यक्तियों की अक्षमता को देखकर सदय ऋषियों ने सगुणोपासना की विधि समझाई। विराट् को कार्यानुसार खण्ड बोध करके सहज स्वीकरणीय एवं सुसाध्य बनाया। सगुणोपासना की शास्त्रों में बहुत प्रशंसा की गई है।

मन्त्रोपासना ही सगुणोपासना है—सगुणोपासना का अर्थ मूर्ति-पूजन मात्र ही नहीं होता। मन्त्र के स्वरूप के अनुसार देवता के स्वरूप की कल्पना को भौतिक आधार देना एक बात हो सकती है, पर वह सगुणोपासना नहीं है। सगुणोपासना का वास्तविक अर्थ है—मन्त्रोपासना, क्योंकि मन्त्र में आकाश की शब्द गुणकता है और वह आकाश है विराट् का प्रतीक, पूर्ण पुरुष का अरूप रूप। मन्त्राधारित सगुणोपासना सभी मन्त्रों में आदरणीय है। श्रुति, स्मृति, पुराण, तन्त्र आदि सारे शास्त्रों में मन्त्रों का उल्लेख है, उनके अपने मन्त्र हैं। संसार की अनिवार्य दुःखयोनिता से मुक्ति पाने के लिये सगुणोपासना मन्त्र के द्वारा ही संभव है, तथा लौकिक सिद्धियों के लिये भी मन्त्रों की आराधना फलदायक होती है। मन्त्र साधन, जप, यज्ञ, अनुष्ठान आदि से व्यक्ति के मन पर लगे कालुष्य दूर होते हैं। कालुष्य दूर होने से मन निर्मल होता है और निर्मल मन अन्तर्मुख होकर अपने जीवात्मा में निहित विराट् को पहचानता है। यही परिचय भेदनाश करता है और भेदनाश से भौतिक सुख-दुःखों के द्वन्द्व का नाश हो जाता है।

तान्त्रिक मन्त्र श्रेष्ठ हैं—सगुणोपासना की विधि में मन्त्र का महत्त्व स्पष्ट हो चुका। मन्त्रों का मूल उद्गम वेद हैं। वेद आज के युग में इतने दुरूह हो गये हैं कि उन मन्त्रों का अर्थ ही समझ में नहीं आता। दूसरी बात यह है कि वेदमन्त्र जितने अधिक शक्ति सम्पन्न और

पवित्र हैं उनकी साधना भी उतनी ही कष्टकर है। और यह आज के व्यक्ति की सामर्थ्य से परे की बात हो गई है कि वह वेद मन्त्रों की उपासना शास्त्रोक्त विधि से कर पाये। वैदिक उपासना आज के व्यक्ति के लिए अतीत का विषय हो गई है, इसलिये वे मन्त्र भी लुप्त प्राय से होते जा रहे हैं, कम-से-कम अनुष्ठान के क्षेत्र में। त्रिकाल दृष्टा ऋषियों ने इस युग की कल्पना करके कलियुग में वेदमन्त्रों पर कील ठोंक दी थी। आज वेदोक्त मन्त्रों के स्थान पर तन्त्र शास्त्र के मन्त्र ही अधिक प्रचलित हैं, वे ही युगानुरूप हैं।

तन्त्र का अर्थ केवल औषधि प्रयोग नहीं है। तनु विस्तारे धातु से निष्पन्न तन्त्र शब्द का अर्थ है विस्तार, तकनीक। मन्त्र का गुप्त भाषण विस्तृत विवेचन का, समयानुकूल भाष्य का विषय बना, दुरूहता समाज की बुद्धि लब्धि के अनुसार सरलीकरण की विधा में ढली तो तन्त्र का आविष्कार हुआ। तन्त्र में औषधि प्रयोग की स्वतन्त्र विधि थी, साथ ही शब्द ब्रह्म का प्रतीक मन्त्र भी यथोचित सम्मान का प्रतीक बना रहा। मोटे तौर पर यही तन्त्रोक्त मन्त्रों का इतिहास है।

वेद मन्त्रों में उपासना का या मन्त्र के रहस्य तथा विधि का उल्लेख किसी ऋषि के नाम पर नहीं है, क्योंकि वह स्वयंभूत ज्ञान है। वेद प्रभु वचन की तरह अनुशासन करता है। स्वतः प्रमाण को किसी आधार की आवश्यकता नहीं रहती इसलिये वह स्वतः प्रभूत सरिता के वेगवान् प्रवाह की तरह मार्ग का निर्माण-निर्धारण करता चलता है। तन्त्र की विधि भिन्न प्रकार की है। किसी भी विधि का निर्देश करने के लिये तन्त्र आदि देव, शिव एवं पराशक्ति शिवा के पुण्य स्मरण से चलते हैं। प्रायः अधिकांश तन्त्र शिव और शिवा के सम्वाद से प्रारम्भ होते हैं। मूल रूप में शिव-पार्वती का संवाद चलता है, इसमें उपासना की विधि और मन्त्र-साधन का प्रकार 'संजय उवाच' की शैली में प्रतिपादित रहता है। कलियुग के मन्त्रों और उपास्य देवताओं का वर्णन प्रत्येक तन्त्र करता है। ऋषियों के आदेश, शास्त्रीय मर्यादा और व्यवहार सिद्ध आधार पर तन्त्रोक्त मन्त्रों की साधना सुकर है। आगम

मन्त्रों की सरलता पर महानिर्वाण तन्त्र के द्वितीय उल्लास में लिखा है—

'हे पार्वती ! कलियुग में तन्त्रशास्त्र-आगम की उपासना-विधि के सिवा कोई दूसरी गति नहीं है। इस बात को श्रुति, स्मृति और पुराणों के माध्यम से मैंने (शिव ने) पहले ही समझा दिया है। बुद्धिमान व्यक्ति तन्त्रोक्त विधि से देवताओं की अर्चना, अभ्यर्थना, उपासना करे। जो व्यक्ति कलिकाल में तान्त्रिक विधि का परित्याग कर के दूसरे किसी प्रकार से देवता तथा मन्त्र की साधना-उपासना करता है उसकी गति नहीं होती है। उसकी उपासना व्यर्थ जाती है, यह सत्य है, सत्य है—इसमें सन्देह नहीं है। कलियुग में तन्त्रशास्त्र विहित मन्त्र ही सिद्ध हैं और तुरन्त फल देने वाले हैं। सब कामों में, जप में, यज्ञ में तान्त्रिक विधि ही प्रशस्त है। इस युग में वेद मन्त्र वैसे ही निष्फल हैं जैसे कोई विषहीन सर्प। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वेदमन्त्र सत्ययुग में उपासना योग्य और फलप्रद थे, किन्तु आज के युग में वे दीवाल पर लिखे सावयव चित्र की तरह निष्प्राण हैं, वन्ध्या स्त्री के समागम की तरह निष्फल हैं। उनसे केवल श्रम ही होता है, फल प्राप्ति नहीं होती। कलिकाल में दूसरे मार्गों से जो व्यक्ति सिद्धि प्राप्त करना चाहता है वह उस मूर्ख की तरह है जो गंगा के किनारे पर प्यास बुझाने के लिए कुँआ खोद रहा है। तन्त्रोक्त मार्ग से भिन्न कोई उपासना विधि इस युग में है ही नहीं। इस विधि से व्यक्ति इहलोक सुख प्राप्त करता है तथा परलोक में मुक्ति लाभ करता है।'

ऋषियों के उक्त प्रकार के अनुशासन में वेद का परिवाद नहीं है न ही तन्त्र का कोरा अर्थवाद है प्रत्युत शक्ति को व्यवहार योग्य बनाने की चेष्टा है। आधुनिक इतिहासकार की परिकल्पित स्थापना के अनुसार पाषाण युग और धातु युग भी व्यक्ति के लिए व्यवहार के विषय रहे हैं। पाषाण युग का व्यवहार आज के लिए असत्य लग सकता है पर वह किसी पीढ़ी के लिए आदरणीय एवं व्यवहार योग्य रहा था। वस्तुतः मानव जीवन की गतिशीलता निरन्तर विकसित होते

रहने की प्रामाणिक कहानी है और प्रत्येक शती अपनी पूर्व शती को अविश्वसनीय लगती है तथा अनागत शती अकल्पित होती है। इस परिवर्तनशीलता में एक सत्य ही विभिन्न रूप में अनुभव किया जाता है। इस सत्य को जीव और ब्रह्म का एकत्त्व कह सकते हैं, तत्त्वों की माया मान सकते हैं अथवा शक्ति का विलास बना सकते हैं। इस सबके बावजूद भी इतना अवश्य है कि वेद शास्त्र विहित मन्त्र और उपासना के प्रकार नितान्त कष्ट साध्य हैं। मन्त्रों को निष्फल बताने का यह अर्थ किसी भी रूप में नहीं है कि वेदमन्त्रों में शक्ति नहीं है अथवा उनकी शक्ति निर्जीव हो चुकी है बल्कि इसका वास्तविक आशय यह है कि आज के व्यक्ति में न उतनी पवित्रता है, न धैर्य है, न शक्ति ही। रोगी की बीमारी असाध्य होती है, इसलिए भी असाध्य कह दी जाती है तो उसकी चिकित्सा के लिए औषधि अलभ्य होने पर भी असाध्य बन जाती है। असाध्य अवस्था एक तरह का परिणाम है, परिणाम की पृष्ठ भूमि कुछ भी हो सकती है। वेद मन्त्रों की मृत अवस्था का कारण भी कलियुगी व्यक्तियों की असमर्थता ही है अन्यथा सत्य कभी मरता नहीं है, तत्त्व कभी शक्तिहीन नहीं हुआ करते।

मन्त्र और गुरु—वैदिक उपासना तथा वेद मन्त्रों की साधना में पूर्व सावधानताओं को सविशेष महत्त्व दिया गया है। उदाहरण के लिए साधक को ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य में से कोई एक होना चाहिए। ब्राह्मण भी यदि यज्ञोपवीत संस्कार से संस्कृत नहीं है तो उसे मन्त्र दीक्षा का अधिकार नहीं है। ऐसी बहुत सारी पाबन्दियाँ वेद मन्त्रों के साथ लगी हुई हैं। तन्त्र शास्त्र के मन्त्र इतनी जटिलताओं से मुक्त हैं। उनपर सबका समान अधिकार है। साधना चाहे वेद मन्त्र की हो या आगम मन्त्र की, उसमें गुरु का स्थान सबसे पहले और सबसे बड़ा है। गुरु से प्राप्त मन्त्र ही विधिवत् साधना करने पर फलदायक रहता है। गुरु की इस महत्ता को आज का तथा आज तक का युग स्वीकार करता आया है। युग ने इस पद के नामों का ही परिवर्तन किया है, कार्य, महत्त्व और स्थान का परिवर्तन नहीं किया। किसी भी ज्ञान की प्राप्ति

के लिए गुरु सर्वाधिक प्रामाणिक एवं आवश्यक व्यक्ति हुआ करता है। मन्त्र चूँकि टैक्नीकल विषय है, सचेतन विज्ञान है इसलिए गुरु का स्थान और भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

गुरु मन्त्र की धुरी है। मन्त्र शास्त्र से सम्बद्ध तथा इतर ग्रन्थों में गुरु का महत्त्व और लक्षण बड़े विस्तार से बताया गया है। योग्य गुरु से ग्रहण किया गया मन्त्र कल्याणकारी एवं फलदायक होता है और उससे साधक सुख प्राप्त करता है। गुरुपद के लिए उपयुक्त व्यक्ति में क्या गुण होने चाहिएँ इस विषय पर शास्त्रीय अनुशासन व मर्यादा का यहाँ विस्तार से विवेचन करना सामयिक एवं प्रासंगिक रहेगा।

गुरु कैसा हो?—चार वर्णों में ब्राह्मण ही मन्त्र देने का अधिकारी है। विश्वासार तन्त्र के द्वितीय पटल में गुरु के पद के योग्य ब्राह्मण के लक्षणों का वर्णन करते हुए कहा गया है—

'जो ब्राह्मण सत्यवादी है, जितेन्द्रिय है, शान्त मन वाला है, माता-पिता की सेवा करता है, नित्य नैमित्तिक कर्म करता है, अपने आश्रम (ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ अथवा संन्यास) में निष्ठित है और अपने देश में निवास करता है, वही गुरु बनने योग्य है, उससे मन्त्र की दीक्षा ली जा सकती है।'

गुरु अथवा शिष्य में सत्यवादिता, जितेन्द्रियता, शान्त मनस्कता आदि का होना व्यवहार एवं अनुभव की दृष्टि से आवश्यक है। ये सब कायिक एवं मानसिक तपस्यायें हैं। असत्य भाषण से, इन्द्रियों पर संयम नहीं रखने से व्यक्ति के मन पर भार बढ़ता है और मन के दूषित रहने से मन्त्र का पवित्र वातावरण नहीं बन पाता है। मन्त्र की साधना मन से सीधा सम्बन्ध रखती है, अतः कायिक, वाचिक एवं व्यावहारिक शुचिता तथा निश्छलता व्यक्ति को मन्त्र की आत्मा का, मन्त्र स्वरूप देवता का दर्शन—प्रसाद कराने—दिलाने में अत्यधिक सहायक बनती है।

गुरु के गुणों का वर्णन करते हुए तन्त्रसार कहता है—

दमन व शमन—'शान्त (इन्द्रियों के विषयों में अतिशय उत्कट

रूप से अनासक्त) दमनशील। शान्त और दान्त शब्द भारतीय साधना विधि में बहुतायत से प्रयोग किये जाते हैं। चेतनवादी विज्ञान में इन शब्दों की आवश्यकता भी पदे-पदे अनुभव होती है, इसलिए इन शब्दों के रहस्य को समझ लेना समीचीन रहेगा। हमारा देह पंच महाभूतों से निर्मित है। इसके लिए संग्रह भी धर्म है तो विसर्ग भी। संग्रह से इस देह का पोषण होता है, विसर्ग से प्रसन्नता प्राप्त होती है। लोभी को जिस तरह संग्रह से सुख मिलता है, वैसे ही त्यागी को विसर्ग से आनन्द की अनुभूति होती है। यथार्थ रूप में संग्रह-त्याग का और परिग्रह-विसर्ग का ही रूप है। एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। हमारे शरीरगत इन्द्रियों के विषय इन परिग्रह-विसर्ग की सीमा में आते हैं। देह की दसों इन्द्रियाँ चाहे वे प्राप्यकारी हैं—वहाँ जाकर काम करने वाली जैसे चक्षु, मुख, हाथ, पैर, उपस्थ आदि, अथवा अप्राप्यकारी हैं—बिना कहीं गये ही कार्य करने वाली जैसे कान, नाक, त्वचा, गुदा आदि इस संग्रह-विसर्ग के माध्यम से ही बाह्य जगत् से बँधी हुई हैं। शरीर की स्वाभाविक प्रवृत्ति और ऐन्द्रिय विषयों की नैसर्गिक अपेक्षा के कारण ये संग्रह-विसर्ग जीवित हैं, व्यक्ति की इन्द्रियाँ इनसे सम्बद्ध हैं। काम वासना उत्कट विसर्ग भावना ही है। वेद शास्त्रीय उपासना दमन में विश्वास करती है। यम-नियम, व्रत-उपवास-विग्रह आदि द्वारा इन्द्रियों को अन्तर्मुख किया जाता है। दमन का यह मार्ग वासना के उद्भव को ही समाप्त कर देने में विश्वास रखता है, शरीर की स्वाभाविक विषयाशक्ति को, मन की उच्छृंखल निम्न गति को कठोर दमन से नियमित करने का अर्थ ही दमन है। शान्त और शमन इससे कुछ भिन्न प्रतीति वाले शब्द हैं। दात और शान्त एक उपलब्धि है, पर दमन और शमन उसकी पृष्ठभूमि है। दमन में आवेश को दबाया जाता है, शमन में आवेश को प्राकृतिकता मानते हुए उसे उचित रीति से, न्याय विधि से, सामाजिक स्तर पर शमन करने का आशय है। आवेश की उपेक्षा नहीं करते हुए, इन्द्रियों की विषयासक्ति को स्वाभाविक आकांक्षा का सम्मान देते हुए आवेशों की परितृप्ति को शमन कहते हैं। जो व्यक्ति

जागतिक भोगों को देह धर्म के रूप में, बिना उत्कट अभिलाषा के शास्त्र तथा सामाजिक अनुशासन में रहकर भोगता है वह शान्त कहलाता है।

शान्त और दान्त समन्वयवादी मार्ग हैं। हिंसा, स्तेय, असूया, व्यभिचार जैसे अपकर्मों के प्रति व्यक्ति को दमन का मार्ग अपनाना चाहिए तथा देह की बुभुक्षा-अनिवार्य परिग्रह-बुभुक्षा के प्रति स्वस्थ एवं शास्त्रोचित विधि के द्वारा प्राप्ति-तुष्टि का मार्ग अपनाना चाहिए। तन्त्र शास्त्र की दृष्टि में युग एवं व्यक्ति की क्षीण क्षमताओं के अनुरूप समन्वयकारी मार्ग ही प्रशस्त है, अतः गुरु पद योग्य व्यक्ति को ही नहीं, दीक्षा लेने वाले साधक को भी सांसारिक पदार्थों के प्रति न अतिशय असक्ति रखनी चाहिए, न प्राकृतिक आवश्यकताओं के प्रति अतिशय अरुचि का अस्वाभाविक दमनकारी रुख ही। ये प्रारंभिक स्थितियाँ हैं, जिनका अभ्यास करने पर व्यक्ति स्वतः ही अन्तर्मुख हो जाता है, उसे न शमन की आवश्यकता रह जाती है न दमन की। ऐन्द्रिय विषयों किंवा जागतिक भोगों के प्रति कठोर दमनकारी वृत्ति रखने से व्यक्ति के पतन की आशंका बनी रहती है। पौराणिक उपाख्यानों में ऋषियों के तपस्या भंग होने का कारण इसी अति कठोर दमन मार्ग को माना गया है। अतिशय विषयासक्ति साधना तो दूर सामान्य व्यक्ति के लिए भी अमंगलकारिणी होती है अतः तन्त्रोक्त शान्त और दान्त गुण समन्वयवादी हैं और युगानुकुल भी।

गुरु के अन्य गुणों में आते हैं कुलीनता। कुलीनता शब्द में दोनों अर्थ हैं। कौल भी और उच्चकुल में उत्पन्न भी। वाममार्गी विचारधारा वालों के लिए गुरु कौल होना चाहिए। सामान्य स्थिति में गुरु को ब्राह्मण होना चाहिए। कुलीन हो, नम्र हो (अभिमानी गुरु के मन्त्र का सत्व क्षीण हो जाता है तथा अभिमानी प्रमादी भी होता है और प्रमाद मन्त्रोपासना में सबसे बड़ा दोष होता है। अभिमानी खुशामद-परस्त और अविवेकी होता है, इसलिए गुरु में विनयशीलता परमावश्यक गुण है) स्वच्छ वस्त्र वाला हो, पवित्र आचरण वाला हो, मन्त्र की साधना एवं सिद्धि में उसकी ख्याति हो, पवित्र हो, चतुर हो.

बुद्धिमान हो, आश्रमनिष्ठ हो, और ध्याननिष्ठ हो, तन्त्र एवं मन्त्र कार्य में निष्णात् हो, सांसारिक भोगों और ऐन्द्रिय विषयों के प्रति नियन्त्रण रखने वाला तथा कृपालु हो और निन्दा-स्तुति से अप्रभावित रहने वाला हो। ऐसा व्यक्ति मन्त्र दीक्षा देने योग्य होता है।

गुरु के इसी विवेचन में स्थानान्तर पर लिखा है कि जो मन्त्र प्रदान करके कल्याण कर सकता हो तथा अभिशाप देकर मन्त्र को निष्फल बना देने की योग्यता रखने वाले गृहस्थी, सत्यवादी श्रेष्ठ ब्राह्मण गुरु बनने लायक हो सकते हैं। मन्त्रदान और मन्त्र नाश को गुरु की सिद्धि का प्रतीक माना गया। जो व्यक्ति देने और लेने में समर्थ है उसीकी क्षमता सम्पूर्ण है अर्थात् उस व्यक्ति को वह मन्त्र सर्वार्थ में सिद्ध है और सिद्ध व्यक्ति से लिया हुआ मन्त्र ही सार्थक होता है। इस दान और आदान का कल्याण प्रतिपाद्य और विनाश का प्रतिपाद्य गुरु की शक्ति सम्पन्नता ही है, अन्यथा गुरु के प्रति अगाध आत्मीयता रखता है, निश्छल स्थान रखता है, अहैतुक कल्याण की कामना रखता है।

निन्दित गुरु—तन्त्र ग्रन्थों में निन्दित गुरु के लक्षण भी बताये गए हैं। अधोलिखित गुण, स्वरूप वाले व्यक्ति शास्त्र के वचनानुसार गुरु-पद के लिए अथवा मन्त्रदान करने के लिए वर्जित हैं, अतः दीक्षार्थी को देख लेना चाहिए कि जिससे वह मन्त्र ग्रहण करने जा रहा है। उसमें ये दोष तो नहीं हैं।

सूर्यमुखी (बिल्कुल सफेद रंग वाला) कोढ़ी, आँखों की बीमारी वाला, बौना, खराब नाखून वाला, काले दांत वाला, स्त्रियों के वशीभूत रहने वाला, अधिक अंग वाला, कम अंग वाला, (काना, लंगड़ा आदि) कपट करने वाला, रोगी, अधिक खाने वाला, ज़्यादा बोलने वाला, जिस पर किसीका शाप हो, जिसके सन्तति पुत्रादि न हो, शरीर और व्यवहार में जो निकृष्ट हो, धूर्त हो, नित्य नैमित्तक कार्य नहीं करता हो, मूर्ख हो, वामन हो, गुरु निन्दा करने वाला हो, रक्त-विकार का रोगी हो, गर्विष्ठ हो अथवा ईर्ष्यालु हो, ऐसे व्यक्ति को गुरु नहीं बनाया जाना चाहिए।

टिप्पणी—शास्त्र के इस प्रकार के अनुशासन में स्पष्टीकरण करने की आवश्यकता नहीं, फिर भी आज के व्यक्ति के लिए शास्त्र वचन के प्रति उत्पन्न होने वाले 'क्यों' का उत्तर आवश्यक हो जाता है, अतः इस प्रश्न भूत शंका के निवारण में निवेदन है कि जिन व्यक्तियों को गुरु-पद के लिए निन्दित माना गया है उसके तीन कारण हैं। पहला कारण है उस व्यक्ति के पूर्व जन्म के पाप और अपवित्रताएं। भारतीय विश्वास के अनुसार (जिसे ऋषियों के तत्त्वज्ञान ने पुष्ट कर दिया है।) रोग, अधिकांगता, न्यूनांगता, सन्तानहीनता आदि ऐसे दोष होते हैं जो व्यक्ति को पूर्व जन्म के दुष्कृतों के फलस्वरूप मिले हैं अतः वे पूर्णतया शुद्ध निर्मल नहीं हो सकते, उनमें इतनी शक्ति नहीं होती कि वे अपने मन्त्र द्वारा किसीका कल्याण कर सकें। उनको पहले अपने पूर्व जन्मार्जित दुःखों को भोग करके नष्ट करना चाहिए।

गुरु के निन्दित होने का दूसरा कारण है व्यक्ति की स्वार्जित दुष्प्रवृत्तियाँ। इस जन्म में सब कुछ पूर्व जन्म का ही नहीं होता, इस जन्म का भी होता है। व्यक्ति की स्थिति बहुत कुछ उसके हाथ के जैसी होती है। हाथ जिस तरह खुला है, लेकिन हर अंगुली और अंगुली का हर पोर बंधा हुआ है, एक-दूसरे से जुड़ा हुआ है। उसी तरह व्यक्ति अपने प्रारब्ध से, पूर्व जन्म में अर्जित कर्मबन्धन से जुड़ा हुआ है तथा हाथ की मुक्त स्थिति के समान वर्तमान में मुक्त है। व्यक्ति को सत्कर्म या दुष्कर्म करने से कोई भी नहीं रोकता, वह चाहे जिस मार्ग पर चलने के लिए स्वतन्त्र है। ऐसी स्थिति में जिस व्यक्ति पर पूर्व जन्म के पाप कर्मों का भार नहीं है, किन्तु जो अपनी प्रवृत्तियों के कारण शुद्धाचरण वाला नहीं है वह भी निन्दित है, गुरुपद के लिए उपयुक्त नहीं है। स्वयं के आचरण से अपवित्र होने वाला व्यक्ति ईर्ष्या, अभिमान, गुरुनिन्दा, स्त्रीजितता, बातूनीपन, अति भोजन, मूर्खता, धूर्तता आदि दोषों से पहचाना जा सकता है। जिनका वर्तमान दूषित है वे व्यक्ति निन्दित हैं, अतः गुरुपद के लिए उपयुक्त नहीं हैं।

तीसरा कारण है गुरु के निन्दित होने का किसी प्रबल व्यक्ति के

द्वारा उसकी शक्ति का नाश, उसकी सिद्धि को अर्थहीन कर देना। व्यक्ति के स्वार्जित दोषों के कारण ही मन्त्र और गुरु निःसत्व नहीं होते किसी प्रबलतर व्यक्ति के प्रभाव अथवा अकृपा के कारण भी प्रभावहीन हो जाते हैं। ऐसी परिभाषा में अभिशप्त और निःसन्तान व्यक्ति आते हैं। अभिशप्त का अर्थ और सम्बन्ध तो सीधे किसीकी अकृपा से सम्बन्ध रखता ही है पर सन्तानहीनता का कारण भी अधिकतया अभिशाप ही होता है, अतः अभिशापग्रस्त व्यक्ति गुरुपद की गरिमा के अनुरूप नहीं हुआ करता।

गुरु की महिमा—गुरु एवं मन्त्र का विश्लेषण करते हुए तान्त्रिक शास्त्र कहते हैं—

'गुरु में मनुष्य बुद्धि रखने वाला (भारतीय दृष्टिकोण गुरु को ब्रह्मा, विष्णु, महेश और साक्षात् परब्रह्म का स्वरूप मानता है) मन्त्र में अक्षर बुद्धि रखने वाला, देव मूर्तियों को पत्थर समझने वाला नरकगामी होता है। माता-पिता जन्म के कारण बनते हैं इसलिए उनकी पूजा-सुश्रूषा करनी चाहिए, किन्तु इनसे भी अधिक गुरु की सेवा करनी चाहिए, क्योंकि गुरु धर्म और अधर्म का ज्ञान करता है। गुरु पिता है, गुरु माता है, गुरु देवता है और गुरु ही गति है। शिव के रूष्ट होने पर गुरु बचा सकता है, गुरु के रूष्ट होने पर शिव भी नहीं बचा सकता। मन, वचन और कर्म से गुरु का हित करना चाहिए, गुरु का अहित करने से विष्ठा का कीड़ा होता है। पिता शरीर देता है और गुरु ज्ञान देता है किन्तु शरीरदाता पिता से बड़ा ज्ञानदाता गुरु होता है। गुरु से बड़ा कोई भी नहीं होता। जिसके मुख से निकलने वाला शब्द ब्रह्म व्यक्ति को नरक सागर से और संसार समुद्र से तार देता है, उस गुरु से बड़ा कोई भी दूसरा नहीं है। गुरु प्रदत्त मन्त्र के त्याग से मृत्यु होती है और गुरु के त्याग से आर्थिक, शारीरिक एवं बौद्धिक विपन्नता होती है तथा गुरु और मन्त्र दोनों के परित्याग से व्यक्ति रौरव नरक में जाता है। गुरु सबसे बड़ा देवता होता है। मन्त्र के देवता का निर्देश भी गुरु ही किया करता है इसलिए गुरु के उपस्थित रहने पर जो पहले

देवता की पूजा करता है उसकी पूजा निष्फल जाती है और वह नरकगामी होता है। जन्म देने वाले और ब्रह्मज्ञान देने वाले में ब्रह्मज्ञान देने वाले पिता रूप गुरु ही अधिक पूज्य हैं इसलिए व्यक्ति को चाहिए कि वे गुरु को सदा पिता से अधिक सम्मान दे। गुरु के प्रति व्यक्ति जो निष्ठा और आदर रखता है, वैसा ही आदर गुरु पुत्रों के प्रति भी रखना चाहिए।

टिप्पणी—उपरिवर्णित शास्त्रानुशासन के सम्बन्ध में निवेदन है कि आज के व्यक्ति के लिए स्वर्ग और नरक का अस्तित्व सन्देह की वस्तु बन गया है पर यह हमारे ज्ञान के बाह्यपरक होने का प्रमाण है, हमारी बुद्धि के स्थूल होने का लक्षण है। हम इतने संकीर्ण ज्ञान वाले हो गये हैं कि इन्द्रियों द्वारा दिए गये ज्ञान को ही चरम सत्य के रूप में स्वीकार करने के लिए तैयार हैं, तदितर को कपोल कल्पना और अन्धविश्वास ही मान लेना चाहते हैं। कोई भी विश्वास जो इतने बड़े समुदायक का है और इतने दीर्घकाल तक जीवित रहता आया है उसे अन्धविश्वास नहीं कहा जा सकता। पुनर्जन्म के कई केस आज भी सुनने में आते हैं। 'कल्याण' में ही नहीं दूसरे समाचार पत्रों में भी पुनर्जन्म और प्रेतों की जीवनी का विवरण स्थान, तिथि आदि के साथ छपता है, अतः परलोक और पुनर्जन्म का सिद्धान्त अन्धविश्वास कहकर उपेक्षणीय नहीं बनाया जा सकता। भारतीय जीवन में नरकगामी होना सबसे बड़ा अभिशाप होता था। आज की पीढ़ी मरणोत्तर स्थिति पर विश्वास करे या न करे, लेकिन इससे नरक-स्वर्ग की वास्तविक स्थिति पर कोई अन्तर नहीं पड़ता। भारत के लिए यह स्थिति अत्यन्त विश्वास की और चाक्षुष् सत्य की रही है, जिसे ऋषियों ने दिव्यचक्षुओं से देखा और वर्णन किया है।

गुरु का इतना महत्त्व किसी वर्ग विशेष की प्रतिष्ठा कराने के उद्देश्य मात्र से नहीं किया गया है, न ही ब्राह्मण को प्रचार के आधार पर सर्वोतम ख्यापित करने का उपक्रम रचा गया है। वास्तविकता यह है कि प्राचीनकाल का ब्राह्मण राजा राम की तरह ध्येयनिष्ठ हुआ

करता था। जिस तरह राम ने अपने राजत्व और व्यक्तित्व को लोक-हित के लिए उत्सर्ग कर दिया था और इसके फलस्वरूप लोक पालक राम का जन्म हुआ था, उसी तरह तपस्या निरत साधुमना ब्राह्मण अपने मनुष्य होने की भावना को साधना को सर्पापित कर देते थे। कर्म-रहित ब्राह्मण की कल्पना करना भी उस युग में असंभव था, इसीलिए साधनहीन, वनवासी ब्राह्मण के आने पर सम्राट् सिंहासन से उतरकर उनका स्वागत करता था। वे ब्राह्मण मूर्तिमान् आचरण होते थे, कर्म का सशरीर स्वरूप होते थे। चाणक्य को हुए कोई बहुत अधिक समय नहीं हुआ। चाणक्य भी गुरु था, वास्तविक गुरु। साधारण से व्यक्ति को सम्राट् बना देने के बाद भी उसी साधारणतम कुटिया में शिष्यों द्वारा जुटाये गए स्वल्पतम साधनों से जीवन-यापन करने वाला चाणक्य गुरुपद के लिए योग्य था, उसका जीवन कर्म के समर्पित था, इसलिए वह स्वयं मूर्तिमान कर्म था। द्रोणाचार्य, वशिष्ठ जैसे ऋषियों का जीवन इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि गुरु और ब्राह्मण, साधारण आदमी नहीं रहते थे। वे अपने पद के प्रति इतने निष्ठावान एवं जागरूक बने रहते थे कि वे स्वयं गुरु के प्रतीक बन जाते थे। गुरुपद के गौरव के सामने उनको मानव की साधारणता, देह की आवश्यकता और मन की तृप्ति जैसे विषय नगण्य लगते थे। उद्देश्य को समर्पित व्यक्ति उद्देश्य स्वरूप हो जाता है इस प्रकार के व्यक्ति को इतना महत्त्व देना स्वाभाविकता है, व्यवसाय अथवा विज्ञापन नहीं। पिछले पृष्ठों में गुरु के लक्षण बताये गए हैं वे इसीका प्रतीक हैं कि जो व्यक्ति मन्त्र के समर्पित है, जिसने जीवन की साधारण आवश्यकताओं, देह की प्राकृतिक पूर्तियों, सांसारिक आसक्तियों से ऊपर उठा लिया है, वही गुरुपद के उपयुक्त है। निन्दित गुरु में असामाजिकता का, अवगुणों का, अमानवीयता का समावेश रहता है। वह देहासक्ति को भी समझता है, अपने कदाचार से वह अपने आपको निम्न स्तर का भी अनुभव करता है इसलिए निन्दित है।

साधक के लक्षण—मन्त्र साधन में गुरु का महत्त्व उन पाँच अंगों

में से है जिनके आधार पर सम्पूर्ण ढाँचा खड़ा होता है। मन्त्रोपासना के पञ्चाङ्ग में यद्यपि शिष्य को गौण माना गया है, फिर भी साधक का लक्षण समझ लेना मन्त्रदाता और ग्रहीता के लिए लाभदायक रहेगा। यदि कोई व्यक्ति मन्त्र ग्रहण करना चाहता है तो वह अपने आपको भी इन कसौटियों पर कसे। इन आयामों से देखने पर यदि कोई न्यूनता दिखाई पड़ती है तो व्यक्ति का यह कर्त्तव्य है कि वह अपने आपको सुधारे-सँवारे, योग्य बनाये और फिर मन्त्र ग्रहण करने की अभिलाषा करे। इससे साधक को सद्यः सफलता मिलेगी और मन्त्र भी असत्य कहलाने के दोष से मुक्त रहेगा। शिष्य के लक्षण संक्षेप में इस प्रकार बताये गए हैं—

शील स्वभाव वाला, गुणवान, विनयी, निश्छल, श्रद्धालु, धैर्य-वान, सर्वकर्म समर्थ, अभिज्ञ, सद्वंश में जन्मा, सच्चरित्र और जितेंद्रिय हो।

निन्दित साधक—निन्दित गुरु की तरह निन्दित शिष्य की भी व्याख्या शास्त्रकारों ने की है। निन्दित शिष्यों की श्रेणी में—पापी, क्रूर, (निर्दयी) धोखा देने वाले, अतिदरिद्र, कंजूस, आचरण भ्रष्ट, मन्त्रभ्रष्ट, मन्त्रद्वेषी, पराई निन्दा करने वाले, आलसी, अत्यन्त कायर, पाखण्डी, सदा रोगी रहने वाले, क्रोधी, लोभी, हमेशा असन्तुष्ट रहने वाले, हिंसा करने वाले, ईर्ष्यालु, कर्कश भाषण करने वाले, अन्यायपूर्ण तरीकों से जीविका चलाने वाले, परस्त्रीरत, पण्डितों से वैर रखने वाले, अपने आपको विद्वान् समझने वाले, दुष्ट, व्यर्थ की बकवास करने वाले, चरित्रहीन और निन्दित व्यक्ति आते हैं।

उपर्युक्त दोषों के रहने के कारण व्यक्ति का मन स्वच्छ नहीं हो पाता। मानसिक निर्मलता के बिना मन की वृत्तियाँ अन्तर्मुखी नहीं होती और मन की अन्तर्मुखता के बिना मन्त्र का प्रयोजन सफल नहीं होता। इन दोषों के कारण व्यक्ति समाज में भी श्रद्धा-भाजन नहीं होता है तो मन्त्र-शास्त्र के पवित्र राज्य में प्रवेश पाने का अधिकारी भी नहीं रह पाता।

मन्त्र से व्यक्ति की स्वकीय शक्तियों का जागरण होता है। मन्त्र की शक्ति भी इस व्यक्तिगत शक्ति को गुणित करती है, अतः यह आवश्यक है कि जिस व्यक्ति को मन्त्र दिया जा रहा है उसके शील, धैर्य, आचरण और ज्ञान की एक वर्ष तक परीक्षा कर ली जाय। मन्त्र-दाता के लिए मन्त्रदान ऐसी ही अनुभूति है जैसी कन्यादान। कन्या का पिता कन्या को बड़े स्नेह और यत्न से पालता-पोसता है और वयस्क होने पर उसे एक धरोहर के रूप में किसी दूसरे के हाथ में सौंप देता है। मन्त्र साधक भी बड़ी जागरूकता और प्रयत्नों से मन्त्र का साधन करता है और उसे दान करता है। यद्यपि मन्त्रदान करने से दाता के पास से मन्त्र सर्वथा नहीं चला जाता, न मन्त्र का दान करना मन्त्रज्ञ के लिए आवश्यक है। फिर भी यत्न साधित मन्त्र का दान बड़ी नाजुक और गंभीर परिस्थिति होती है। इससे दीक्षा दिए जाने वाले व्यक्ति को एक बना-बनाया शक्तिपुंज मिल जाता है, अतः शिष्य बनने के इच्छुक व्यक्ति की सब तरह से परीक्षा कर ली जाय।

शास्त्र कहता है कि मन्त्री का पाप राजा को, सेवक का पाप स्वामी को, स्वयं का पाप स्वयं को तथा शिष्य का पाप गुरु को लगता है, इसलिए शिष्य के गुण-दोषों का परीक्षण बड़ी सावधानीपूर्वक कर लेना गुरु और शिष्य दोनों के लिए ही श्रेयस्कर होता है। शिष्य के लिए यह सुविधा है कि वह किसी प्रकार के अवाञ्छित अभ्यास का विषय बन गया है तो उसे छोड़ देने की कोशिश करे। गुरु शिष्य को तब तक मन्त्रोपदेश न करे जब तक उसके आचरण की परीक्षा ठीक प्रकार से न कर ले।

(आब्जर्वेशन पीरियड) परिवीक्षा काल चारों वर्णों के लिए अलग-अलग है। अर्थात् गुणवान् ब्राह्मण एक वर्ष तक, क्षत्रिय दो वर्ष तक, वैश्य तीन वर्ष तक और शूद्र चार वर्ष तक गुरु के निकट परिवीक्षा के रूप में रहें। इतने समय में शिष्य की सभी योग्यतायें गुरु को दृष्टि-गत हो जायेंगी। परिवीक्षा काल में भली प्रकार से उपयुक्त सिद्ध हो जाने पर ही गुरु यथासमय विधि-विधानपूर्वक मन्त्रोपदेश करे।

आज के युग में जातियों, उपजातियों के अनन्त विस्तार में चार वर्णों का विशुद्ध आधार ढूँढ़ लेना सरल काम नहीं है। प्राचीन काल से चली आ रही वर्ण संकरता के भीतर से विशुद्ध जातीयता को तलाश कर पाना भी आसान काम नहीं है, किन्तु इन शास्त्र-मर्यादाओं को सामयिक सन्दर्भ में समझ लेना भी बुद्धिमानी ही होगी। युग ने अपनी आवश्यकता के अनुसार विकास के लिए समाज को इकाइयों में बाँट लिया था और इकाइयों से सुनिश्चित व द्रुत विकास होता है इसलिए यह विभाजन उस युग के लिए कल्याणकारी सिद्ध हुआ। आज परि-स्थितियाँ बदल गई हैं तथा तन्त्र के लिए जाति कोई बहुत बड़ी बाधा नहीं रही है इसलिए ऐसे प्रसंगों में व्यक्ति के गुणों को ही सर्वोपरि महत्त्व देना व्यावहारिक बात होगी।

कई बार ऐसा भी होता है कि व्यक्ति को पूर्व जन्म के संस्कारों के कारण स्वप्न में ही मन्त्र का निर्देश हो जाता है, अतः ऐसे मन्त्र के लिए कोई नियम नहीं है। व्यक्ति स्वप्नलब्ध मन्त्र को जब चाहे सिद्ध कर सकता है तथा सिद्ध होने पर जिसे चाहे उसे दे सकता है, पर देने से पहले शिष्य में शिष्यत्व के गुण अवश्य देख ले।

मन्त्र, देवता और गुरु इन तीनों में कोई भेद नहीं होता। मन्त्र देवता की शाब्दिक अभिव्यक्ति है तो देवता मन्त्र का स्वरूप है और गुरु मन्त्र का द्रष्टा है, अतः इन तीनों में कोई अन्तर नहीं है।

मन्त्र का देवता—कलियुग में मन्त्र ग्रहण करने से पूर्व मन्त्र के अधिष्ठाता देवता की अर्चना करने का विधान है। देवता की अर्चना तान्त्रिक विधि से की जाय। कलिकाल में तन्त्रोक्त विधि ही वास्त-विक विधि है। सत्य युग में वेदनिर्दिष्ट विधि से, त्रेतायुग में स्मृति विहित प्रकार से, द्वापर में पुराणों में वर्णित विधि से तथा कलियुग में तन्त्र-शास्त्र द्वारा बताई गई विधि से देवता का समाराधन करना चाहिए। तन्त्रोक्त विधि से देवता की अर्चना करना फलदायक होता है। इस तथ्य का विश्लेषण करते हुए तन्त्रसार में लिखा है कि, 'युग का प्रभाव अपरिहार्य है, अतः कर्म और क्षमता में कमी आ जाने के

कारण कलियुग के ब्राह्मण अपवित्र और शूद्रों के कर्म करने वाले होंगे, इसलिए वेद विहित साधना उनके वश की बात नहीं होगी और तन्त्रोक्त विधि ही सुगम-श्रेयस्कर होगी। मन्त्रों के अर्थ देवता होते हैं और देवता गुरु के स्वरूप होते हैं, इसलिए मन्त्र, देवता और गुरु में भेद नहीं करना चाहिए।'

कौन किससे मन्त्र ले ?—मन्त्र ग्रहण करने के सम्बन्ध में शास्त्र की मर्यादा है—

उदासीन व्यक्ति उदासीन से, वनवासी वानप्रस्थी से, यति यति से, गृहस्थ-गृहस्थ से, वैष्णव वैष्णव से मन्त्र ग्रहण करे अर्थात् उद्देश्य के अनुसार तदनुरूप व्यक्ति से ही मन्त्र ग्रहण करना ठीक है इतर से नहीं। इस सम्बन्ध में मेरा स्पष्टीकरण है कि सन्यासी जिस मन्त्र का जप करता है अथवा वानप्रस्थी को जो मन्त्र सिद्ध है वह एकाकी करने वाला, निःसंग बना देने वाला मन्त्र होता है। उससे गृहस्थी की लोक साधना नहीं हो सकती। यदि संन्यासी गृहस्थी की स्थिति के अनुसार श्री-सौभाग्य की वृद्धि करने वाला मन्त्र देता है तो वह निष्फल रहता है क्योंकि वह सिद्ध नहीं होता, अतः जिस प्रकार की स्थिति में मन्त्र ग्रहीता है उसी स्थिति का मन्त्रदाता भी होना चाहिए।

विशेषतया इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वैष्णव वैष्णव से, शैव शैव से और शाक्त शाक्त से ही मन्त्र ग्रहण करे।

भारत के ये शैव, शाक्त और वैष्णव सम्प्रदाय परम शक्ति के स्थान और स्वरूप भेद के कारण व्यवहार में आए। इनमें उपासना विधि का भेद ही मुख्य रहा है। साधना के माध्यम में कोई अन्तर नहीं है। अन्तिम स्थिति पर पहुँचते न पहुँचते शिव, शिवा और विष्णु एकरूप हो जाते हैं। इस अन्तर ने एक मौलिक दृष्टि दी है, विशिष्ट उपासना विधि दी है। लक्ष्य को न अभारतीय बनाया है न विभाजित ही किया है। आज इन मत-मतान्तरों के कारण समाज में द्वेष भावना पनप रही है। शैव अपने आपको शाक्तों से श्रेष्ठ मानते हैं और वैष्णव शैवों तथा शाक्तों को वेद-विरुद्ध, अतः अपवित्र समझते हैं। हुआ यह

है कि लोगों में उपासना के स्थान पर दम्भ अधिक आ गया। दूसरे को नीचा दिखाकर अपने आपको श्रेष्ठ करने की भावना ने मतों का विनाश कर दिया, लोगों के मन से आस्तिकता को ही उखाड़ फेंका।

व्यक्ति साधना केंद्रित रहता है तो वह स्वयं को और मतान्तरों को भूला रहता है पर जब उसमें साधना के स्थान पर प्रदर्शन का मोह उपजता है तो अहंकार का उदय हो आता है। अहंकारी आत्मनाश तो करता ही है बेचारी निरपराध उपासना विधि को भी बदनाम कर देता है। भारत में प्रचलित नाना प्रकार की उपासना विधियाँ व्यक्ति के विस्तृत ज्ञान की परिचायक हैं। एक साध्य को प्राप्त करने के लिए अनेक विधि मार्ग खोज लेने के अथक प्रयास के सार्थक परिणाम हैं, इनका साध्य भेद, बुद्धि, द्वेष भावना और ऊँच-नीच का अन्तर नहीं है। यह दोष समाज के धुरीणों का है, मत के महन्तों का है, जिन्होंने साधना के स्थान पर घृणा का प्रचार-प्रसार किया, सबका सम्मान करने की अपेक्षा अपने को सम्मानित करने का उपक्रम रचा।

सारे मन्त्रों, मतों और देवताओं का केन्द्र शक्ति है। शक्ति के बिना किसीका भी अस्तित्व नहीं, उस शक्ति को जो चाहे सो नाम दे लिया जाय कोई अन्तर नहीं आता। अन्तर तब आता है जब शक्ति की उपेक्षा कर दी जाती है और नाम को सर्वस्व मान लिया जाता है। शक्ति के रूप में समस्त विश्व एक है, सारे जागतिक क्रिया-कलाप उसी शक्ति के कारण निष्पन्न होते हैं, शक्ति के ही कारण व्यष्टि सम से जुड़ा हुआ है। जो तथ्य इतनी निकटता से सम्बद्ध है, जो सत्य इतनी दृढ़ता से व्याप्त है वह न घृणा सिखाता है, न द्वेष, न उच्चता का दम्भ और न अमंगल। समाज को जोड़ने का काम करता है धर्म, व्यक्ति की उन्नति करने का पवित्र दायित्व लेता है मत। इस प्रकार के विखण्डन आदमी की क्षुद्रता के कारण हैं, व्यक्ति का क्षुद्र बोध अहंकार का आश्रय लेकर इस प्रकार के द्वेष का प्रसार किया करता है, अतः इन दोषों से बचते हुए, सबमें एकत्व की भावना रखते हुए, इतर मतों को सम्मान देते हुए, शैव को शैव से, शाक्त को शाक्त

मतावलम्बी से और वैष्णव को वैष्णव से ही मन्त्र ग्रहण करना चाहिए।

शैवता, शाक्तता और वैष्णवता में परस्पर विरोध नहीं होता है, न इनमें कोई पारमार्थिक भेद ही होता है, पर यह व्यक्ति की आस्था का, उसकी निजी रूप-कल्पना का विषय है, अतः एक ही मत के प्रति सहज विश्वास और आत्मीयता होती है। मन्त्र ग्रहण करने में यह मत श्रेयस्कर रहा करता है।

मन्त्र ग्रहण करना और मन्त्र प्रदान करना अत्यन्त सावधानी का विषय है। अनधिकृत व्यक्ति से मन्त्र ग्रहण करने पर वह निष्फल होता है। अपात्र एवं निन्दित व्यक्ति को मन्त्रदान करने से मन्त्रदाता दोष-भागी होता है। शास्त्र का आदेश इस सम्बन्ध में मन्त्र की पवित्रता और शक्ति को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए कठोर है। आदेश एवं शास्त्रीय मर्यादाओं का उल्लंघन करने के लिए किसी भी व्यक्ति को छूट नहीं है। वास्तव में इन मर्यादाओं से मन्त्र की क्षमता बनी रहती है और वह फलदायी बना रहता है।

मन्त्रदान में शास्त्रों ने दो स्थितियाँ बताई हैं। एक मन्त्र वह है जो विधिवत् ग्रहण करने के पश्चात् उपासना द्वारा सिद्ध कर लिया जाता है। सिद्ध मन्त्र व्यक्ति की स्वार्जित साधना हो जाती है और उसके लिए शास्त्रों की मर्यादा शिथिल कर दी गई है। दूसरी स्थिति में सिद्ध पुरुष एवं कर्मनिष्ठ व्यक्ति शास्त्रोक्त मन्त्रों का उपदेश कर सकता है। यह व्यावहारिक दृष्टि से संभव नहीं है कि असंख्य मन्त्रों को व्यक्ति सीमित जीवन में पुरश्चरणादि द्वारा सिद्ध कर सके किन्तु एक विधि में पूर्ण और कर्मनिष्ठ रहने वाला व्यक्ति इतर मन्त्रों का उपदेश कर सकता है और साधक उससे ग्रहण कर सकता है। आगे विभिन्न ग्रन्थों के मतानुसार इसका विवेचन किया जा रहा है कि कौन किसको मन्त्रदान कर सकता है?

कल्पशास्त्र में लिखा है कि स्त्री-पुत्रवान्, दयालु, सबका कल्याण चाहने वाला, सर्वप्रिय, ज्ञानवान् और कर्मनिष्ठ ब्राह्मण का दिया मन्त्र निष्फल नहीं जाता है।

मन्त्र दान के अधिकारी और अनाधिकारी—पिता-नाना, छोटा-सगा भाई तथा शत्रुपक्ष के व्यक्ति से मन्त्र ग्रहण करने का निषेध योगिनी तन्त्र में किया गया है।

गणेश विमर्षिणी तन्त्र के मत से पति, पिता, वनवासी और उदासीन से मन्त्र ग्रहण करने से मन्त्रदाता का अनिष्ट होता है और ग्रहीता को सिद्धि नहीं मिलती है।

रुद्र यामल तन्त्र के अनुसार पति अपनी पत्नी को, पिता अपने पुत्र को तथा पुत्री को और भाई अपने सहोदर भाई को मन्त्र न दे।

अपवाद—उपरिवर्णित चारों मर्यादायें सिद्ध मन्त्र के लिए शिथिल मानी गई हैं। किसी व्यक्ति ने अपनी साधना के आधार पर यदि मन्त्र को सिद्ध कर लिया है तो वह अपनी पत्नी को दे सकता है तथा ज्येष्ठ-कनिष्ठ पुत्र अपने पिता से ग्रहण कर सकते हैं। सिद्ध-मन्त्र में भाई-भाई का अथवा अन्य निकटस्थ पारिवारिक सम्बन्धों से कोई अन्तर नहीं पड़ता। मन्त्र साधना सिद्ध होने की स्थिति में जीवित रहता है और वह सामान्य स्थिति के बन्धनों से मुक्त हो जाता है। ऐसे सिद्ध मन्त्रों के लेने-देने में कोई दोष अथवा आपत्ति नहीं होती।

गणेश विमर्षिणी तन्त्रोक्त यति, उदासीन और वनवासी से मन्त्र ग्रहण का निषेध भी सामान्य स्थिति में ही किया गया है, सिद्ध मन्त्र के सम्बन्ध में यह निषेध विशेष अर्थ नहीं रखता।

शक्ति यामल की व्यवस्था इस सम्बन्ध में यह है कि यति, उदासी अथवा वनवासी भी तीर्थ और सदाचारवान् है, ज्ञानवान् है, सिद्ध-मन्त्र है, विख्यात है, नित्य कर्म करने वाला है तो उससे मन्त्र ग्रहण कर लेना चाहिए। भाग्यवशात् कोई सिद्ध मन्त्र वाला मिल जाय तो उससे मन्त्र ग्रहण करने में गुरुपद की योग्यताओं का विचार नहीं करना चाहिए। अपवित्र स्थान पर पड़े हुए स्वर्ण को ग्रहण करने वाला स्थान-समय का विचार नहीं करता, स्वर्ण के महत्त्व को मानता-समझता है, अतः सिद्ध मन्त्र रूपी स्वर्ण के मिलने के अवसर पर शास्त्रीय मर्यादाओं का विचार न करे। स्वयं शास्त्र भी इसके लिए आदेश देते हैं।

सिद्ध मन्त्र के अलावा दूसरा मन्त्र; पिता, पति, भाई, पति, उदासी आदि व्यक्तियों से लिया गया मन्त्रदोष भाजन बनाता है। अज्ञान अथवा प्रमादवश लिया ऐसा मन्त्र निष्फल तो होता ही है ग्रहीता को भी प्रायश्चित करना पड़ता है। प्रायश्चित के रूप में दस हजार गायत्री का जप करके फिर योग्य व्यक्ति से पुनः मन्त्र ग्रहण करने का विधान शास्त्रों में है।

मत्स्य सूक्त के वचनानुसार पिता से ग्रहण किया हुआ मन्त्र शक्तिहीन होता है। पिताग्रहीत मन्त्र के जप से कोई फल नहीं मिलता। इस स्थल पर अपवाद के रूप में शैव और शाक्त मन्त्रों को माना गया है। अर्थात् कौलाचार दीक्षा में दीक्षित होने पर पिता आदि व्यक्ति शैव और शाक्त मन्त्रों का उपदेश कर सकते हैं। कौलाचारवान् मन्त्रज्ञ अपने ज्येष्ठ पुत्र को मन्त्रोपदेश कर सकता है—इस बात का समर्थन शास्त्रीय मर्यादा करती है।

मन्त्र ग्रहण का स्थान व अवसर—गंगा, प्रयाग आदि तीर्थों में, चन्द्र ग्रहण और सूर्य ग्रहण के समय मन्त्रदीक्षा लेने में विशेष विचार नहीं करना चाहिए क्योंकि तीर्थों पर ऋषियों ने तपस्या की है, उनकी (तीर्थों की) अपनी शक्ति और महिमा होती है, चन्द्र ग्रहण जैसे समय में मन्त्र की और पृथ्वी तत्व की शक्ति उग्र रूप होकर एक स्वरूप हो जाती है, अतः इन तपःसिद्ध स्थानों पर और प्राकृतिक शुद्ध अवसरों पर लिया गया मन्त्र निर्दोष एवं शक्ति सम्पन्न होता है, उसके ग्रहण करने में विशेष व्यक्ति और स्थिति का विचार नहीं किया जाना चाहिए।

ऊपर स्वप्नलब्ध मन्त्र का वर्णन आया है। मतान्तर में स्वप्नलब्ध मन्त्र को संस्कार से शुद्ध करने पर ही जप योग्य और साधना लायक माना है।

मन्त्र विराट् शक्ति का केन्द्र है, गुणातीत ब्रह्म की शाब्दिक प्रतीति है। शक्ति का विग्रह होने से मन्त्र में शक्ति होती है। शक्ति से विचार क्रियान्वित हो जाते हैं। सूक्ष्म भावना जगत् को स्थूल में कार्य रूप में

परिणत करना शक्ति के द्वारा ही संभव होता है। मन्त्र के स्वरूप के साथ ही मन्त्र देने योग्य गुरु की योग्यता और मन्त्र ग्रहण करनेवाले शिष्य की पात्रता पर विचार करने से साधना निर्दोष और निश्चित फलदायिनी होती है। मन्त्र शास्त्र इस विषय में पूर्ण सतर्कता बरतने का आग्रह करता है। दीक्षा के बिना केवल पुस्तकों में वर्णित मन्त्र की साधना उचित नहीं होती। मन्त्र वही होता है जो शास्त्र में वर्णित रहता है पर उसे जप द्वारा सिद्ध करने के पहले योग्य व्यक्ति से उसकी दीक्षा अवश्य ले लेनी चाहिए।

स्त्री मन्त्र दे सकती है—दीक्षा में विधवा स्त्री का निषेध है। मन्त्र दीक्षा में स्त्री से मन्त्र ग्रहण करने में कोई आपत्ति शास्त्र की दृष्टि से नहीं है, बशर्ते कि वह स्त्री विधवा नहीं हो और अपेक्षित गुणवती हो। स्त्री दीक्षक में क्या गुण होने पर उससे मन्त्र की दीक्षा लेनी चाहिए—इस प्रश्न के उत्तर में शास्त्रानुशासन है—पतिव्रता, अच्छे चरित्र और आचरण वाली, गुरुभक्त, जितेन्द्रिय, मन्त्रों के अर्थ और रहस्य को जानने वाली, सुशीलवती, पूजारत स्त्री गुरु बन सकती है, व्यक्ति ऐसी स्त्री से मन्त्रोपदेश ग्रहण कर सकता है किन्तु विधवा न हो। स्त्री से ली गई दीक्षा शुभ होती है। माता यदि उक्त गुण सम्पन्न हो तो उससे ग्रहण किया गया मन्त्र आठ गुण फल देनेवाला होता है।

दीक्षा बिना मन्त्र निष्फल होता है—मन्त्र साधन से पूर्व दीक्षा ग्रहण करने से मनुष्य को दिव्य ज्ञान होता है, सभी पाप धुल जाते हैं। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, संन्यास और वानप्रस्थ सभी आश्रमों में उपासना योग्य मन्त्रों की दीक्षा लेना आवश्यक है। दीक्षा के बिना कोई भी मन्त्र, कोई भी साधना सफल नहीं होने की। जप, तपस्या, यज्ञ आदि सभी कार्य दीक्षा पर निर्भर करते हैं। मन्त्र की दीक्षा लेने के बाद व्यक्ति चाहे किसी भी आश्रम में रहे उसका मन्त्र सिद्धिदाता बना रहता है। अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रम में लिया हुआ मन्त्र गृहस्थाश्रम में, गृहस्थाश्रम ग्रहण किया हुआ मन्त्र वानप्रस्थाश्रम में भी सिद्धिदाता होता है। मन्त्र एक गहन साधना है, गुरुतर तपस्या है इसे सिद्ध करना ही श्रम

साध्य है, सिद्ध होने के पश्चात् यह कभी भी न बिगड़ने वाली और बिना साधन-ईंधन के कार्य करनेवाली मशीन की तरह व्यक्ति के कार्य सम्पादन करता रहता है। किसी भी समय किसी भी स्थान और स्थिति में मन्त्र अलौकिक सहायक की तरह सेवा में तत्पर रहता है। दीक्षा के बिना मन्त्रोपासना करनेवाला व्यक्ति मरणोपरान्त नरकगामी बनता है। मन्त्र दीक्षाहीन व्यक्ति का पिशाचत्व दूर नहीं होता।

यदि कोई व्यक्ति सुनकर अथवा पुस्तकादि की सहायता से ही प्राप्त मन्त्र की साधना करता है तो उसे बहुत बड़ा दोष लगता है। जो मन्त्र व्यक्ति के लिए परम कल्याणकारी और कार्यसाधक होता है वही विधिवत् दीक्षा लिये बिना अमंगलकारी बन जाता है। सद्गुरु के पास यथाविधि मन्त्र ग्रहण करना मन्त्रोपासना के लिए प्रथम और अनिवार्य कर्त्तव्य है।

मन्त्र केवल शब्दावली ही नहीं होता, उसके साथ मन्त्रका कर्मकाण्ड और व्यक्ति का आचरण जुड़ा हुआ रहता है। मन्त्र की लय शब्दों पर किया जाने वाला स्वराघात व बलाघात, मन्त्र के अर्थ के अनुसार उसका उच्चारण आदि कई बातें ऐसी होती हैं जो गुरु के मुख से नहीं सुनने से विपरीत फलदायिनी हो सकती हैं।

मैं व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर यह बात निस्सन्देह रूप से कह सकता हूँ कि कई बार अपने अल्पज्ञान के आधार पर पुस्तकों की सहायता मात्र से उग्र शक्ति सम्पन्न मन्त्रों का जप करके व्यक्ति अपनी हानि कर बैठे हैं। हमने घर में बिजली लगा ली यही कोई उपलब्धि नहीं हुआ करती, बिजली से विविध प्रकार के कार्य लेने के लिए उसका स्वभाव, सावधानी और कार्यविधि समझ लेना आवश्यक होता है अन्यथा हमारे सारे कर्मों को सम्पन्न करने वाली विद्युत् हमारे लिए प्राणलेवा भी सिद्ध हो सकती है।

दीक्षा और गुरु के सम्बन्ध में आज के युग की वर्तमान पीढ़ी के विचार-विश्वास को देखते हुए मेरा अनुभवसिद्ध आग्रह यह है कि तन्त्र शास्त्र युगों पहले, हजारों वर्ष पहले सिद्ध व्यक्तियों द्वारा उपदेशित है।

सहस्त्रों वर्षों से उनकी सामयिक व्याख्या एवं युगानुरूप संशोधन करने की चेष्टा की ही नहीं गई, अतः वर्तमान काल में तन्त्र भी दुरूह बन गया है। फिर भी ऐसा नहीं है कि आज मन्त्र की दीक्षा लेने वाले श्रद्धालु व्यक्ति नहीं है अथवा मन्त्रोपदेश करने योग्य व्यक्ति ही निःशेष हो गए हैं। आज चरित्र और श्रद्धा की कमी हो गई है। विशेष कार्यों के लिए उपास्य मन्त्रों के विषय में ही श्रद्धा सहित दीक्षा की आवश्यकता होती है। राम, कृष्ण, हनुमान आदि देवता (ये देवता वेदोक्त नहीं हैं अपने चरित्र एवं शक्ति के कारण देवताओं की श्रेणी में मान लिये गए हैं तथा कलियुग में इनका नाम भी अतिपवित्र माना जा सकता है। इनके चरित्र का पाठ करने से इनके नाम स्मरण से व्यक्ति का कल्याण होता है, मनोकामना सिद्ध होती है) वस्तुतः श्रद्धा सबसे बड़ी गुरु है। श्रद्धा किसी भी प्रतीक के सहारे मुखर हो कल्याणकारिणी होती है। उदात्त चरित्र वाले अवतारों के चरित्र का मनन-श्रवण करने से व्यक्ति सुचरित्र संपन्न बनता है और सदाचार अपने आप में एक सिद्धि है। श्रद्धा सहित जप करने से व्यक्ति का जप एवं अनुष्ठान सफल होता है, भले ही वह तुलसीदास की चौपाइयों और हनुमान् चालीसा की हिन्दी शब्दावली में ही किया गया हो। शब्दों से अधिक महत्त्व भावना का, श्रद्धा का होता है, अतः सामयिक अवतारों का नाम स्मरण और उनके चरित्रों का श्रवण निःसन्देह रूप से व्यक्ति के लिए कल्याणकर रहता है। इन नाम पर आधारित जपों में सबसे बड़ी विशेषता यह रहती है कि ये चाहे जहाँ भी किये जा सकते हैं और इन से व्यक्ति का अनिष्ट नहीं होता, भले ही ऐसे जपों से भौतिक उपलब्धियाँ विलम्ब से हों या न हों।

तान्त्रिक अनुष्ठानों एवं मन्त्रों में केवल भावना ही अन्तिम तत्त्व नहीं हुआ करती। जिन साधनों में इच्छा शक्ति एवं आत्मविश्वास को उग्र बनाया जाता है उनमें व्यक्ति की शक्तियों का उद्दीपन होता है और यह कार्य आचार-विचार की शुद्धि के साथ आत्मविश्वास मात्र से सफल हो जाता है। किन्तु तान्त्रिक मन्त्रों में गुरु से दीक्षा ग्रहण करके

नियम पूर्वक साधना करने से ही फल मिला करता है। तान्त्रिक मन्त्रों में अलौकिक शक्ति हुआ करती है, इसलिए उनके साधन में शास्त्रीय निर्देशों का पालन आवश्यक होता है। देवों के एवं तन्त्रोक्त मन्त्रों के साधन में पूरी सतर्कता बरतना जरूरी होता है और उनसे वैसी ही गुरुतर सिद्धियाँ भी मिला करती हैं। अन्यथा करने पर उनसे लाभ के स्थान पर हानि हो जाया करती है। योग्य से योग्य व्यक्ति भी असावधानीवश अथवा प्रमाद के वशीभूत होकर उसके उच्चारण एवं कर्मकाण्ड में त्रुटि करता है तो उसके साधक का स्वास्थ्य क्षीण होने लगता है, उन्माद हो जाता है, जिस कार्य को सिद्ध करने के लिये अनुष्ठान करता है उसका विनाश होने लगता है अतः शास्त्रोक्त मंत्रों का अनुष्ठान बड़ी सावधानीपूर्वक करना चाहिए।

तान्त्रिक मंत्रों की साधना मारण-उच्चाटन-विद्वेषण आदि कर्मों में ही विपरीत फलदायिनी नहीं हुआ करती शान्ति-पुष्टि के कर्मों में भी उसका फल प्रतिकूल मिलने लगता है। यह स्वयंसिद्ध बात है कि जिसमें जितनी शक्ति होगी उसके सम्बन्ध में उतनी ही सावधानी रखनी पड़ेगी। अतः मंत्र दीक्षा, यज्ञ, अनुष्ठान कर्मकाण्ड में पूरी अविधानता रखनी पड़ती है। कष्ट निवारण के लिये, सुख-शान्ति की वृद्धि के लिए, आत्मकल्याण के लिये, सौभाग्यवृद्धि और अरिष्ट भंग के लिये अवतारों के नाम एवं चरित्रों का स्मरण अति लाभदायक रहता है। कोई युग था, जब ज्ञान योग लोगों के लिये उपादेय था, योगप्राण तत्त्व का संयम-साधना का प्रकार था, किन्तु आज के मायामोह ग्रस्त दुर्बलमना व्यक्ति के लिये भक्ति योग ही सर्वाधिक फलदायी और सुगम रह सकता है। राम नाम का जप या कृष्ण के नाम का स्मरण ही सकल भौतिक विपदाओं से उद्धार कर सकता है।

देवताओं की अथवा अवतारों की सार्थकता इस तथ्य का स्पष्ट प्रमाण है कि वे जनकल्याण के लोक साधना के मूर्तिमान् प्रतीक थे, अतः उनके नाम और चरित्रों का स्मरण व्यक्ति के मंगल के लिए होता है। इनसे कल्याणकारी समाधान और आत्म साक्षात्कार के पथ की

प्राप्ति हो सकती है, दूसरे कार्य नहीं हो सकते। तन्त्र शास्त्र में विहित विविध सिद्धियों के लिए ये कारगर साबित नहीं हो सकते। राम का नाम अथवा कृष्ण का चरित्र पीड़ित व्यक्तियों का दुःख मोचन कर सकता है, आततायियों का नाश करने के लिए अभिचार कर्म जैसे प्रयोगों में उसका उपयोग नहीं किया जा सकता। किसीको इनके जप से यदि अलौकिक अनुभूति होती है तो यह उनकी मानसिक शक्ति का चमत्कार है। मन को अन्तर्मुख बनाने से व्यक्ति आत्म साक्षात्कार के क्षणों को पाकर निहाल हो जाता है।

मन्त्र और वर्ण (जाति)—कृत युग, द्वापर और त्रेता तक यह व्यवस्था रही थी कि व्यक्ति ब्राह्मण के न मिलने पर अपने सजातीय अथवा उच्च वर्ण से मन्त्र ग्रहण कर सकता था अर्थात् क्षत्रिय क्षत्रिय से, वैश्य क्षत्रिय और वैश्य से और शूद्र वैश्य से दीक्षा ले सकता था किन्तु वर्तमान युग में इतर वर्णों में (ब्राह्मण वर्ण में भी) इतनी संकरता हो गई है कि मन्त्रदान का अधिकार केवल ब्राह्मण को ही है। शूद्र शूद्र को मन्त्रदान करे तो दोनों नरकगामी होते हैं। आज की परिस्थिति में ब्राह्मण और शूद्र का यह अन्तर असंगति, उत्पीडन और विचित्रता का कारण लग सकता है किन्तु आज का व्यक्ति सहस्रों वर्ष पूर्व की व्यवस्था के पीछे निहित कारणों का सही विश्लेषण नहीं कर सकता। समाज के कल्याण में निरत, निस्संग ऋषियों ने वर्ण व्यवस्था को इतना महत्त्व दिया इसमें अवश्य कोई न कोई कारण रहा था। सामयिक सन्दर्भ में हम वर्ण व्यवस्था के सम्बन्ध में इतना ही कह सकते हैं कि सामाजिक विकास के लिए इस प्रकार की इकाइयों का निर्माण लाभदायक ही रहा था।

दीक्षित होना और मन्त्र देना दोनों बड़े पुण्य के कार्य हैं। रुद्र यामल तन्त्र में लिखा गया है कि जो द्विजातियों को मन्त्रोपदेश करता है वह सब पापों से मुक्त होकर पुण्य का फल प्राप्त करता है।

बीज मन्त्र—मन्त्रों में बीज मन्त्र का सर्वाधिक महत्त्व है। बीज मन्त्र वैसे ही सूत्र हैं जैसे आज की बीजगणित में किसी स्थूल पदार्थ

के लिए कल्पित अक्षरों के प्रतीक। बीज मन्त्र की शक्ति और सफलता आज के वैज्ञानिक सूत्रों की तरह निर्विवाद है, निस्सन्देह है और गणित की तरह सत्य है, पर इन मन्त्रों के जप में, उच्चारण में और कर्मकाण्ड में गुरु द्वारा निर्दिष्ट सावधानी और आस्था रखनी पड़ती है। ऐसा करने पर व्यक्ति की साधना सफल होती है व्यतिक्रम करने पर विपरीत फल मिला करता है, इसमें कोई सन्देह नहीं। बीज मन्त्र अपार शक्ति सम्पन्न होते हैं, स्थूल जगत् में वे सीधे प्रभावकारी होते हैं अतः इनकी दीक्षा, उपासना आदि में पूर्ण जागरूकता बरतना ही कल्याणकर होता है।

चार प्रकार के मन्त्र—समाज में प्रचलित वर्ण व्यवस्था के अनुसार ही मन्त्रों का भी वर्गीकरण किया हुआ है। ब्राह्मण मन्त्र, क्षत्रिय मन्त्र, वैश्य मन्त्र और शूद्र मन्त्र—ये चार प्रकार के मन्त्र चारों वर्णों के अनुसार दीक्षा और उपासना योग्य माने गए हैं। इन मन्त्रों का यह वर्गीकरण उनके आदि में अथवा अन्त में जोड़े जाने वाले बीज मन्त्रों के आधार पर किया गया है। जिस मन्त्र में चार बीजाक्षर होते हैं वह ब्राह्मण के उपयुक्त है, तीन बीजाक्षरों वाला मन्त्रक्षत्रिय के लिए, द्विबीजाक्षरों वाला मन्त्र वैश्य के लिए तथा एक बीजाक्षर वाला मन्त्र शूद्र के लिए उपयोगी रहता है।

मन्त्रदान में अथवा उपासना में शूद्र को एकबीज वाला मन्त्र ही फलदायक होता है, वैश्य को द्विबीज वाला, क्षत्रिय को त्रिबीज वाला और ब्राह्मण को चतुर्बीज वाला। ब्राह्मणादि वर्णों के लिए अपने से न्यून बीज वाले मन्त्रों का साध्य भी शास्त्रोक्त है पर जिनको न्यून बीज वाले मन्त्रों की साधना करनी चाहिए उनके लिए अधिक बीज वाले मन्त्रों का विधान नहीं है। माया बीज ब्राह्मण जाति का, श्री बीज क्षत्रिय जाति का, कामबीज वैश्य जाति का और वाग्भव बीज शूद्र जाति का माना गया है। जिन मन्त्रों में कोई बीज नहीं होता वे पौलस्त्य मन्त्र कहलाते हैं। इनपर शूद्र जाति का भी अधिकार है। शूद्रों के लिए प्रणव बीज मन्त्र का उपदेश नहीं करना चाहिए। वैसे भी प्रणव बीज गृहस्थी

के लिए अनुकूल नहीं रहता। यों दिन में सौ पचास बार प्रणव मन्त्र का जप या उच्चारण करने से कोई अन्तर नहीं पड़ता पर इससे अधिक संख्या पहुँचने पर गृहस्थी का जीवन रिक्त होने लगता है। सांसारिक सुखों और सिद्धियों में बाधा पड़ने लगती है—यह अनुभव सिद्ध बात है। जयपुर के विख्यात तान्त्रिक स्वर्गीय श्री हरिशास्त्रीजी ने मेरे इस विचार को सत्य माना था। कालान्तर में कल्याण में जगद्गुरु शंकराचार्य के विचार भी इसी आशय के प्रकाशित हुए थे, अतः इस अनुभव सिद्धता को शास्त्रीय और आप्त वचनों का आधार भी मिल गया था। वास्तव में प्रणव मन्त्र—ओंकार का—स्वभाव परमोज्ज्वल है। इस मन्त्र के जप से व्यक्ति को आत्मदर्शन होता है। जैसे यह एक ब्रह्म का प्रतीक है वैसा ही यह साधक को भी बना देता है। प्रणव संन्यासियों के लिए परम हितकारी मन्त्र है, गृहस्थ के लिए इसका विधान होकर भी दैहिक अथवा भौतिक सुख के वृद्धिकर रूप में नहीं है। विगत मध्यकाल में कुछ ऐसी भ्रान्त परम्परायें पड़ीं कि उन्होंने शास्त्र को जीवित रखने के लिए अनर्गल फैशन चला दिए। मेरा आशय प्रणव मन्त्र को अनुपयोगी अथवा व्यर्थ सिद्ध करने का नहीं है, बल्कि मेरा निवेदन तो इतना भर है कि प्रणव मन्त्र क्षीर सागर है, इसे लोटा भरने के लिए अथवा आंगन धोने के लिए काम में नहीं लिया जाना चाहिए।

मध्यकाल में भारत पर आक्रान्ताओं के कारण बड़ी विपत्ति आई थी। उस समय का लक्ष्य धर्म और संस्कृति पर आघात करना था। अंग्रेजों ने भी हमारे देश के अतीत को और सांस्कृतिक उच्चता को बिगाड़ने का, तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करने का जो षड्यन्त्र चालू किया था वह आज भी चालू है। अंग्रेजीयत में पले भारतीय भी उसी दृष्टिकोण से हमारी व उनकी अपनी संस्कृति और इतिहास को देखते-परखते हैं। उस मध्यकालीन व्यतिक्रम के कारण आज के कर्मकाण्ड में प्रयुक्त नवग्रहों के मन्त्र तक असंगत है। ग्रहों के लिए प्रयोग में लाए जाने वाले मन्त्रों में उन ग्रहों का न नाम है, न स्वरूप। शास्त्रीय व्यव-

स्था के अनुसार मन्त्र देवता का स्वरूप होता है। जब उस मन्त्र में सम्बन्धित देवता के लिए कुछ भी नहीं है तो उसे उपासना और कर्म-काण्ड में मान्यता किस आधार पर मिल गई इस आधार का तो पता चल जाता है लेकिन आजकल उसमें संशोधन करने में बरती गई उपेक्षा का क्या कारण रहा—यह समझ में नहीं आता। जिस ब्राह्मण वर्ग का यह अधिकार और कर्त्तव्य था, जो मन्त्रोपासना में सर्वाधिक योग्य व्यक्ति वंश परम्परा के आधार रहते आये उन्होंने भी इस विषय में घोर उपेक्षा बरती जिसका फल है कि यह पवित्र और सत्य शास्त्र ही उपेक्षणीय हो गया। दूसरे, ऐसी भ्रान्त और सदोष उपासना से सिद्धि का नहीं होना ही स्वाभाविक है।

स्त्री और शूद्र वर्ग को प्रणव घटित अथवा प्रणव मन्त्र का जप नहीं करना चाहिए। अजपा मन्त्र (हंसः) स्वाहान्त मन्त्र अथवा ओम् स्वाहा युक्त मन्त्र, लक्ष्मी बीज (श्रीं) वाला मन्त्र, गुरु मन्त्र और सावित्री बीज वाला मन्त्र शूद्र और स्त्री के लिए लाभदायक नहीं होता। गोपाल मन्त्र, शिव, दुर्गा, गणेश और सूर्य का मन्त्र इन वर्गों के लिए कल्याणकारी और सिद्धिदाता होता है, अतः इन देवताओं के मन्त्रों की ही उपासना करनी चाहिए। इस प्रसंग में प्रणव, स्वाहा आदि युक्त मन्त्रों वाली व्यवस्था भी ध्यान में रखनी चाहिए।

इस शास्त्रीय मर्यादा से शूद्र वर्ग अथवा स्त्री जाति को निराश होने की आवश्यकता नहीं है। यह व्यवस्था ठीक वैसी ही है जैसी किसी विधान सभा में अध्यक्ष, राज्यपाल, सरकारी पक्ष और दूसरे सदस्यों के बैठने की व्यवस्था हुआ करती है। शास्त्रीय दृष्टि अति प्राचीन युग की है, उस समय की सामाजिक व्यवस्था इसे स्वीकार करती होगी। इसके बावजूद भी स्त्रियों और शूद्रों को इतना अयोग्य नहीं माना गया कि उन्हें इस क्षेत्र में आने की आज्ञा ही नहीं थी। बात वास्तव में यह रही थी कि स्त्रियों और शूद्र वर्ग पर सामाजिक जिम्मेदारियाँ अधिक थीं। वे श्रम जीवी वर्ग का प्रतिनिधित्व करते थे, उनका मन बाह्य कर्मों में अधिक लगा रहता था इसलिए उन्हें इस क्षेत्र में

मर्यादित अधिकार थे। शास्त्रों का आशय स्त्री जाति एवं शूद्रों को अपमानित करने का नहीं था, बल्कि इस क्षेत्र में व्यक्ति की योग्यता, उसका सांसारिक कर्त्तव्यों में व्याप्त रहना आदि आधार ही मान्य रहे थे। स्वकल्याण के लिए उपासना के द्वार कदापि बन्द नहीं रहे फिर साधक को तो कल्याणकारिणी उपासना चाहिए, दूसरे प्रकारों की ठेकेदारी नहीं।

स्वयं शुद्ध मन्त्र—सिद्ध सारस्वत तन्त्र की व्यवस्था के अनुसार नृसिंह, सूर्य, वराह मन्त्रों के शोधन की आवश्यकता नहीं है। प्रसाद बीज (ह्रौं) प्रणव वाले मन्त्रों में भी शोधन की आवश्यकता नहीं है। स्वप्नलब्ध, स्त्री-गुरु प्रदत्त, माला मन्त्र (जिसमें बीस से अधिक अक्षर हों) त्र्यक्षरी मन्त्र और वेदोक्त मन्त्रोंकी शुद्धि और शोधन की आवश्यकता नहीं रहती। मालामन्त्र के नपुंसक वर्गी मन्त्रों के भी शोधन की आवश्यकता नहीं रहती। शोधन की प्रणाली इसी अध्याय में आगे बातई जायगी। सूर्य के अष्टाक्षरी, पंचाक्षरी आदि सभी मन्त्र स्वयं शुद्ध हैं। मन्त्रों का वर्गीकरण स्त्री, पुत्र, और नपुंसक रूप में किया गया है। जिस मन्त्र के अन्त में 'हुफट्' का प्रयोग होता है वह पुं मन्त्र, जिसमें 'स्वाहा' अन्त में हो वह स्त्री और 'नमः' अन्त वाला नपुंसक मन्त्र हुआ करता है।

इस विवेचन के तुरन्त आगे वाले पृष्ठों पर मन्त्र-साधना का ज्योतिष् के आधार पर विवेचन किया जायेगा। मन्त्र की राशि, नक्षत्र और गणादि का ज्ञान करने से सुगमता और सफलता रहती है, किन्तु काली, तारा, महादुर्गा, त्वरिता, छिन्नमस्ता, वाग्वादिनी, अन्नपूर्णा, कामाख्या, बाला, मातंगी, शीलवाहिनी, भुवनेश्वरी, धूमावती, बगला, कमला इन महाविद्याओं का मन्त्र लेते समय नक्षत्र-राशि आदि का विचार नहीं करना चाहिए। इन मन्त्रों केशुद्धि संस्कार की आवश्यकता भी नहीं रहती है। कारण, ये स्वभावतः शुद्ध हैं।

मन्त्र और ज्योतिष्—इसके बावजूद भी ज्योतिष् की उपेक्षा करना संगत प्रतीत नहीं होता। जिन ऋषियों ने इन देवी स्वरूपों के

मन्त्रों को अनाविल बताया है उन्होंने ही प्रत्येक मन्त्र के अनुकूल प्रतिकूल होने के तथ्य का बड़ी सूक्ष्मतापूर्वक विचार किया है, अतः साधक अपना और मन्त्र का पारस्परिक सामाञ्जस्य सिद्ध करने वाला सूत्र अवश्य देख-परख ले।

मन्त्र का देना कन्यादान जैसी एक व्यवस्था है। शास्त्रों ने मन्त्र का और मन्त्रग्रहीता का कुलाकुल निश्चय करने के लिए एक विधि बताई है। इससे साधक सरलतापूर्वक जान जायेगा कि कौन-सा मन्त्र उसके लिए अनुकूल सद्यः फलदाता होगा। इस विधि से विचार किए बिना ग्रहण किया गया मन्त्र प्रकारान्तर से हानिप्रद हो जाया करता है, जिसके लिए साधक यह नहीं जान पाता कि साधना सम्यक् प्रकार से करने पर भी क्षीणता और हानि क्यों हो रही है। एक ही सिद्धि के लिए कई प्रकार के मन्त्र होते हैं, इसलिए यह बात चिन्ता करने लायक नहीं होती कि कार्य विशेष के लिए साधक को मन्त्र मिले ही नहीं। आयुर्वेद में एक हो रोग के लिए अनेक औषधियाँ होती हैं। अनेक औषधि बताने का अर्थ यही है कि व्यक्ति की प्रकृति के और रोग की स्थिति तथा मौसम के अनुसार औषधि फलदायक हुआ करती है। समझदार चिकित्सक इन सब तथ्यों पर विचार करके चिकित्सा व्यवस्था करता है। मन्त्रज्ञ के लिए ये विचार साधक के कार्य, स्थिति आदि की पूर्ण परीक्षा हेतु अत्यन्त आवश्यक हैं।

कुलाकुल चक्र—कुलाकुल चक्र से मिलान करने के लिए पाँच कोष्ठकों में अकार से क्ष तक के पचास वर्ग पृथ्वी जल, आदि तत्त्वों के साथ वर्गीकरण करके लिखे गए हैं। मन्त्र ग्रहण करने वाले व्यक्ति के नाम का पहला अक्षर और मन्त्र का पहला अक्षर मिलावें। यदि दोनों अक्षर एक ही कोष्ठक के हों तो स्वकुल के होते हैं अन्यथा अकुल के होते हैं। मान लीजिए कमलनयन नाम का व्यक्ति 'तत्सवितुः' से प्रारंभ होने वाला कोई मन्त्र ग्रहण करता है तो यह मन्त्र उस ग्रहीता के लिए एक भूत, एक देवता या स्वकुल होता है। ऐसा मन्त्र निश्चित फलदाता होता है। मन्त्र और ग्रहीता में प्राकृतिक साम्य मिल जाता

है। यदि मन्त्र और उपासक का कुल या देवता न मिले तो मित्र कुल का मन्त्र ले लेना चाहिए। स्वकुल नहीं मिले तो जल दैवत अथवा

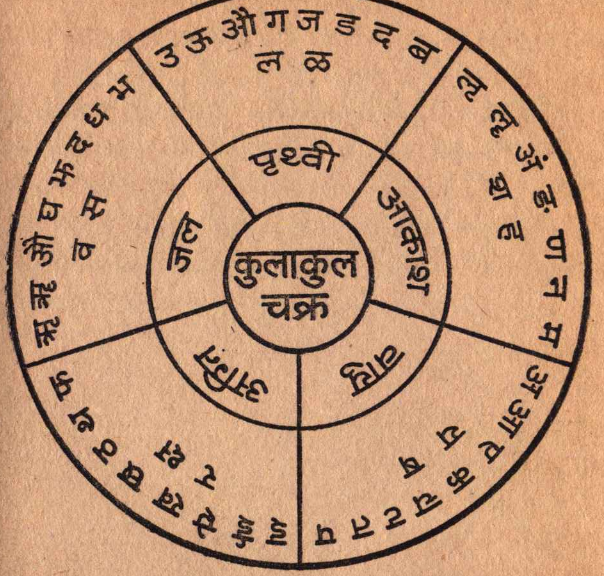

वरुण कुल के साथ पृथ्वी तत्त्व अथवा भू दैवत की मित्रता होती है अतः यदि उपासक पृथ्वी तत्त्व के कोष्ठक वाले अक्षरों के नाम वाला है और मन्त्र का प्रथमाक्षर जल तत्त्व वाले कोष्ठक के अक्षरों में से है तो यह मित्रकुल माना जाएगा। इसी प्रकार मारुत वर्ग में आने वाले अक्षरों से किसी मन्त्र अथवा साधक का नाम प्रारम्भ होता है तो उसे अग्नि दैवत वाले कोष्ठक अक्षरों से प्रारम्भ होने वाला मन्त्र का जप करना चाहिए। आकाश तत्त्व सभी का मित्र है इसलिए आकाश तत्त्व के कोष्ठक में लिखे अक्षर यदि किसी मन्त्र अथवा उपासक के प्रथमाक्षर हैं तो वह किसी भी मन्त्र को ग्रहण कर सकता है।

मन्त्र के और साधक के शत्रुवर्ग की स्थिति में उपासना नहीं करनी

चाहिए। वायु तत्त्व के कोष्ठक के अक्षर यदि किसी मन्त्र या साधक के प्रथमाक्षर होते हैं तो उसे पृथ्वी तत्त्व के कोष्ठक में लिखे वर्गों से प्रारम्भ होने वाले अक्षरों का मन्त्र नहीं लेना चाहिए। यही स्थिति अग्नि या तैजस् तत्त्व के साथ जल एवं पृथ्वी तत्त्व की होती है। अग्नि तत्त्व के साथ तैजस् और जल तत्त्व की शत्रुता होती है।

राशिचक्र—राशिचक्र देखने का प्रकार है—एक कोष्ठक में राशि का नाम और कुछ अक्षर लिखे हुए हैं। साधना करने वाला व्यक्ति अपने जन्म राशि (जन्म की राशि का ज्ञान न रहे तो प्रचलित नाम से राशि का ज्ञान कर लें) से मन्त्र जिन अक्षरों से प्रारम्भ होता है उस कोष्ठक तक गिन ले। यदि वह स्थान आठवाँ, छटा और नवाँ राशिस्थ

राशि चक्र

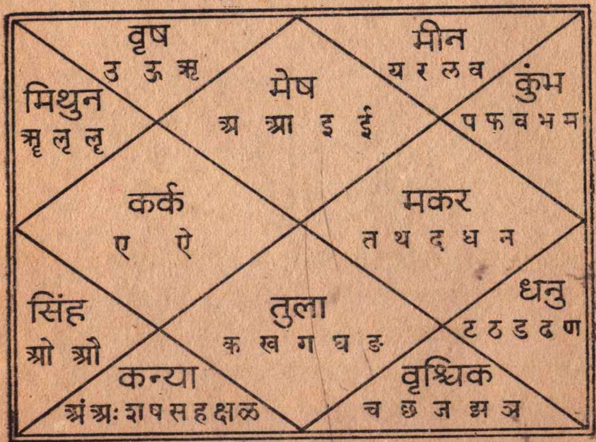

हो तो ऐसे मन्त्र का परित्याग कर दे। मान लीजिए किसीकी जन्म राशि अथवा राशि मीन है और उसे 'च' से प्रारम्भ होने वाला मन्त्र लेना है। मीन राशि से 'च' पाँचवी राशि पर पड़ता है। इसी विधि से आगे लिखी बातों का विचार करे। जन्म राशि से पहली, पाँचवी

और नवीं राशि पर स्थित मन्त्र मित्रवत् हितकर रहता है। दूसरी, छठी, दसवीं राशि स्थित मन्त्र सिद्धिदाता, तीसरी, सातवीं और ग्यारहवीं राशि स्थित मन्त्र पुष्टिकर, चौथी, आठवीं, बारहवीं राशि स्थित मन्त्र घातक होता है।

इन बारह कोष्ठकों को लग्न, धन, भाई, बन्धु पुत्र, शत्रु, स्त्री, मृत्यु, धर्म, कर्म, आय और व्यय का प्रतीक माना गया है। जिस कोष्ठक में जो स्थान माना गया है। उस मन्त्र के जपने से वही सिद्धि मिला करती है।

नक्षत्र चक्र—नक्षत्र चक्र में दो प्रकार से गणना की जाती है। यदि मन्त्र ग्रहण करने वाले व्यक्ति का जन्म नक्षत्र और उस मन्त्र के प्रथमाक्षर वाले कोष्ठकों का गण मिलता है तो यह सुन्दर बात है।

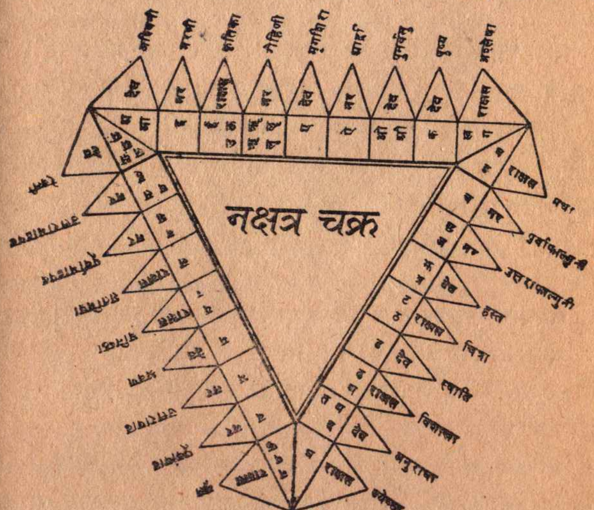

देवगण वाला देवगण वर्ग का मन्त्र लेता है तो सद्यः सिद्धि मिलती है ऐसे ही राक्षस गणवाला राक्षस गण का ले तो भी देवगण वाला मनुष्य गण के मन्त्र को ग्रहण कर सकता है किन्तु साधक और मन्त्र के गण

मानुष और राक्षस हों तो विनाश तथा देव और राक्षस गण हों तो शत्रुता होता है। दूसरा मन्त्र और नक्षत्र मिलाने का तरीका यह है कि साधक अथवा मन्त्र के नक्षत्र से मन्त्र अथवा साधक के नक्षत्र तक की गणना करे, नौ के बाद फिर एक से करे, ऐसा करने पर तीसरे, पाँचवें और सातवें नक्षत्र पर आवे तो उसका परित्याग कर दे। दूसरे, चौथे, छठे, आठवें और नवें नक्षत्र स्थित मन्त्र शुभ होते हैं। मान लीजिए किसी व्यक्ति का जन्म नक्षत्र चित्रा है और उसे रेवती नक्षत्र में लिखित अक्षरों से प्रारंभ होने वाला मन्त्र लेना है तो चित्रा से श्रवणा तक नौ हो गए इसके बाद फिर एक से गिनने पर रेवती पाँचवें स्थान पर आता है अतः इस मन्त्र का परित्याग करना ही उचित है वैसे भी चित्रा का राक्षस और रेवती का देव गण है अतः दोनों दोष हैं।

मन्त्र ग्रहण में मास—मन्त्र ग्रहण में महीनों का महत्त्व है। चैत्र में मन्त्र लेने से सर्व सिद्धि, वैशाख में धन लाभ, ज्येष्ठ में मरण, अषाढ में स्वजन हानि, श्रावण में दीर्घायु, भादों में सन्तान नाश, आश्विन में रत्नलाभ, कातिक और मार्गशीर्ष में मन्त्रसिद्धि, पौष में शत्रुवृद्धि और पीड़ा, माघ में बुद्धि का बिकास और फाल्गुन में सर्व-मनोरथ सिद्धि होती है। मल मास में कोई भी मन्त्र नहीं लेना चाहिए।

अपवाद—अपवाद के रूप में शास्त्रों की निम्न व्यवस्था है—

चैत्र मास में केवल गोपाल मन्त्र लेना ही श्रेयस्कर रहता है! आषाढ मास में भी बिद्या का मन्त्र ग्रहण करना ही अनुचित है शेष मन्त्र नहीं।

मन्त्र ग्रहण में वारफल—रविवार को मन्त्र लेने से धन लाभ, सोमवार को शान्ति, मंगलवार को आयुक्षय, बुधवार को श्री वृद्धि, गुरुवार को ज्ञान लाभ, शुक्रवार को सौभाग्य हानि और शनिवार को अपकीर्ति होती है।

वारफल

वार नाम	रविवार	सोमवार	मंगलवार	बुधवार
फल	धन लाभ	शान्ति	आयुक्षय	श्री वृद्धि

वार नाम	गुरुवार	शुक्रवार	शनिवार
फल	ज्ञान प्राप्ति	भाग्य हानि	अपकीर्ति

मन्त्र ग्रहण में तिथिफल—प्रतिपक्ष में मन्त्र लेने से ज्ञान नाश, दोज में ज्ञानवृद्धि, तीज में शीलवृद्धि, चौथ में धन हानि, पंचमी में बुद्धि विकास, षष्ठी में बुद्धिनाश, सप्तमी में सुख प्राप्ति, अष्टमी में बुद्धि विनाश, नवमी में स्वास्थ्य हानि, दशमी में राज्य व सम्मान लाभ, एकादशी में पवित्रता लाभ, द्वादशी में सर्वार्थ सिद्धि, त्रयोदशी में दरिद्रता, चतुर्दशी में पक्षी योनि में जन्म, अमावस में कार्य हानि और पूर्णमासी में धर्मवृद्धि होती है।

तिथिफल

तिथि	प्रतिपदा	दोज	तीज	चतुर्थी	पंचमी
फल	ज्ञाननाश	ज्ञानवृद्धि	शीलवृद्धि	धन हानि	बुद्धिविकास

तिथि फल

तिथि	षष्ठी	सप्तमी	अष्टमी	नवमी	दशमी
फल	बुद्धि नाश	सुख	बुद्धि नाश	रोग	राज्य लाभ

तिथि	एकादशी	द्वादशी	त्रयोदशी
फल	पवित्रता लाभ	सर्वसिद्धि	दरिद्रता

तिथि	चतुर्दशी	पूर्णिमा	अमावस्या
फल	पक्षीयोनी में जन्म	धर्म वृद्धि	कार्य हानि

सन्ध्या के समय, बादलों के गर्जन के समय भूकम्प और उल्कापात के समय मन्त्र ग्रहण नहीं करना चाहिए। छठ और तेरस के दिन विष्णु मन्त्र का निषेध है दूसरे मन्त्र का नहीं है। दोज, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, दशमी, तेरस और पूर्णिमा में मन्त्र ग्रहण श्रेयस्कर रहता है। शिव मन्त्र षष्ठी में लेने में कोई दोष नहीं होता।

मन्त्र ग्रहण में नक्षत्र—अश्विनी नक्षत्र में मन्त्र लेने से शुभ, भरणी में मरण, कृतिका में दुःख, रोहिणी में ज्ञानलाभ, मृगशिरा में सुख, आर्द्रा में बन्धुनाश, पुनर्वसु में धनलाभ, पुष्य में शत्रुनाश, अश्लेषा में मृत्यु, मघा में दुःखनाश, पू० फाल्गुनी में श्रीवृद्धि, उ० फाल्गुनी में ज्ञान, हस्त में धन लाभ, चित्रा में ज्ञान लाभ, स्वाति में शत्रुनाश,

विशाखा में दुःख, अनुराधा में बन्धु लाभ, ज्येष्ठा में पुत्र हानि, मूल में यशलाभ, श्रवण में दुःख, धनिष्ठा में दरिद्रता, शतभिषा में बुद्धि लाभ, पू० भाद्रपद में सुख और रेवती में कीर्ति लाभ होता है।

आर्द्रा और कृतिका नक्षत्र में शिव और सूर्य मन्त्र को तथा ज्येष्ठा और भरणी में राम मन्त्र को लेने से उक्त फल मिलता है।

नक्षत्र फल

नक्षत्र	अश्विनी	भरणी	कृतिका	रोहिणी
फल	शुभ	मरण	दुःख	ज्ञानलाभ

नक्षत्र	मृगशिरा	आर्द्रा	पुनर्वसु	पुष्य	अश्लेषा
फल	सुख	बन्धुनाश	धनलाभ	शत्रुनाश	मृत्यु

नक्षत्र	मघा	पूर्वा फाल्गुनी	उत्तराफाल्गुनी	हस्त
फल	दुःखनाश	श्रीवृद्धि	ज्ञानलाभ	धनलाभ

नक्षत्र	चित्रा	स्वाति	विशाखा	अनुराधा	ज्येष्ठा
फल	शत्रुनाश	शत्रुनाश	दुःख	बन्धुलाभ	पुत्रहानि

नक्षत्र	मूल	श्रवण	धनिष्ठा	शतभिषा	पूर्वाभाद्रपद
फल	यशलाभ	दुःख	दरिद्रता	बुद्धिविकास	सुख

नक्षत्र	उत्तराभाद्रपद	पूर्वाषाढ	उत्तराषाढ	रेवती
फल	कीर्ति	अशुभ	श्रीनाश	कीर्तिलाभ

मन्त्र और योग—प्रीति, आयुष्मान् सौभाग्य, शोभन, धृति, वृद्धि, ध्रुव, सुकर्मा साध्य, शुक्र, हर्षण, वरीयान्, शिव, ब्रह्मा और इन्द्र ये सोलह योग मन्त्र ग्रहण में शुभ एवं सिद्धिदाता हैं।

मन्त्र और करण—बव, बालव, कौलव, तैतिल और वणिज ये पाँचों शुभ हैं। शुक्ल पक्ष में मन्त्र लेना शुभ होता है। कृष्ण पक्ष की पंचमी तक मन्त्र लेना शुभफलदायी होता है। सम्पत्ति एवं भौतिक सिद्धि प्राप्त करने वाले को शुक्ल पक्ष में तथा मुक्ति चाहने वाले को कृष्ण पक्ष में मन्त्र ग्रहण करना चाहिए।

अपवाद—निषिद्ध मास में भी विशिष्ट तिथियों में मन्त्र ग्रहण करने की व्यवस्था रत्नावली तन्त्र में इस प्रकार दी गई है। भाद्रपद मास की दोनों पक्ष की षष्ठी, आश्विन की कृष्ण चतुर्दशी, कार्तिक की शुक्ल नवमी, चैत की काम चतुर्दशी, वैशाख की अक्षय तृतीया, ज्येष्ठ मास की दशमी, आषाढ की शुक्ल पंचमी, श्रावण की कृष्ण पंचमी में नक्षत्र अनुकूल नहीं होने पर भी मन्त्र देने में कोई दोष नहीं है।

इनके अलावा चैत्र शुक्ला त्रयोदशी, बैशाख शुक्ला एकादशी, ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दशी, आषाढ की नाग पंचमी, श्रावण की एकादशी, भाद्रपद की जन्माष्टमी, आश्विन कृष्णा अष्टमी, कार्तिक शुक्ल नवमी, मार्गशीर्ष शुक्ला षष्ठी, पौष की चतुर्दशी, माघ शुक्ला एकादशी फाल्गुन शुक्ला

षष्ठी मन्त्र ग्रहण में पूर्वोक्त प्रकार से शुभ फल देने वाली मानी गई हैं।

संक्रान्ति के समय, चन्द्र सूर्य ग्रहण के समय और युगादया तथा मन्वन्तरा तिथि में मन्त्र लेने में कोई विचार नहीं करना चाहिए। ये तिथियाँ स्वभाव से पवित्र हैं।

सोमवती अमावस्या, मंगलवार में पड़ने वाली चतुर्दशी और रविवार में पड़ रही सप्तमी तिथि को मन्त्र लेने से भी विशेष फल मिलता है इनमें नक्षत्रादि की गणना नहीं की जाती है। रुद्रयामल तन्त्र में लिखा है कि गंगा के तट पर अत्यन्त पवित्र तीर्थ स्थान में, कुरुक्षेत्र में, प्रयाग में, काशी में अथवा अन्य किसी प्रसिद्ध तीर्थस्थल, पर तिथि नक्षत्र आदि का विचार मन्त्र ग्रहण करने में नहीं किया जाता।

गौशाला, गुरु का घर, देव मन्दिर, जंगल, बगीचा, तीर्थक्षेत्र, नदी का तट, इमली के पेड़ के निकट, पहाड़ की चोटी, पर्वत की गुफा और गंगा का तट मन्त्र ग्रहण करने के सर्वश्रेष्ठ स्थान हैं।

गया, सूर्यक्षेत्र, विरजातीर्थ, चन्द्र पर्वत, चट्टग्राम, मातंग देश और अपनी पुत्री के घर पर लिया गया मन्त्र निष्फल होता है।

इन सारे विवेचनों के सार में शास्त्र यह भी निर्देश देता है कि यदि गुरु किसी साधक को मन्त्र देने की कृपा करता है तो साधक को तिथि, वार, नक्षत्र, स्थान आदि का कुछ भी विचार नहीं करना चाहिए क्योंकि गुरु साधक के हित को सर्वाधिक विचारता है तथा गुरु अशुभ समय में मन्त्र दीक्षा करने की गलती नहीं कर सकता। फिर भी यदि आपत्कालिक स्थिति में गुरु मन्त्रोपदेश करता है तो शिष्य का यह धर्म है कि बिना किसी विचार के श्रद्धापूर्वक मन्त्र ग्रहण कर ले। कारण यही है कि गुरु मन्त्र सिद्ध होता है और उसकी तपस्या के कारण सभी ग्रह नक्षत्रादि अनुकूल हो जाते हैं अतः समय, स्थान आदि का विचार व्यर्थ रहता है।

मन्त्रदान विधि—शास्त्रीय व्यवस्था यह है कि मन्त्र जिस दिन देना हो उससे पहले दिन शिष्य को बुलाकर गुरु अपने पास रखे और 'ओम् हिलि-हिलि शूलपाणाये स्वाहा' इस मन्त्र का उपदेश करे। शिष्य इस

मन्त्र का जप करे और स्वप्नाधिपति भगवान् शूलपाणि का जप करता हुआ देवस्थान में भगवान् शंकर की मूर्ति को पसवाड़े करके सो जाय। रात्रि में जो स्वप्न दीखे उससे मन्त्र की सिद्धि अथवा असिद्धि का अर्थ लगा ले। स्वप्न में कन्या, छत्र, रथ, दीपक, भव्य भवन, कमल के पुष्प, नदी, हाथी, बैल, माला, समुद्र, सर्प, पर्वत, घोड़ा, यज्ञ का मांस और मद्य देखने से स्वप्न का आशय मन्त्र साधक के अनुकूल है। ऐसी स्थिति में किया गया अनुष्ठान सफल होता है।

प्राचीन काल में लोगों की चित्त शुद्धि रहा करती थी और गुरु भी तपस्वी रहा करते थे इसलिये प्रथम रात्रि के जप में ही मन्त्र से दृष्टान्त हो जाया करता था। आज मेरी समझ में उपरिलिखित मन्त्र स्वप्न साधन का मन्त्र है इसलिए यह मन्त्र एक रात्रि के प्रयोग से ही इस रूप में सफल दृष्टान्त कर पाये—यह अपवाद रूप में ही संभव है फिर कृपा सबसे बड़ी बात है अन्यथा इस मन्त्र के अनुष्ठान से स्वप्न सिद्धि का प्रयोग किया जाता है और साधक को स्वप्न में ही सन्देश मिल जाता है जिसे तुरन्त उठकर लिख लेना होता है, नहीं लिख पाने पर लाख कोशिश करने पर भी वह सन्देश याद नहीं रहता—यह तथ्य परीक्षण करने पर सामने आया है इसकी साधना यथा-स्थान बताई जाएगी।

मन्त्र शास्त्र में भौतिक दृष्टि से और सांसारिक सिद्धियों के विचार से समस्त कर्मों को छः भागों में विभाजित किया है। मारण, मोहन, उच्चाटन, स्तम्भन, विद्वेषण और वशीकरण। इन कर्मों से भिन्न सिद्धियों के लिए विस्तृत विवेचन मन्त्र और ज्योतिष् शीर्षक के अन्तर्गत किया गया है। इस भिन्न विवेचन में दोनों ही बातें हैं, इन कर्मों में सफलता देने वाले मन्त्रों की साधना भी और सिद्ध मन्त्रों का कार्य सम्पादन के लिए प्रयोग भी।

मन्त्र और ऋतु—चैत्र-वैशाख अर्थात् वसन्त ऋतु में आकर्षण-वशीकरण कर्म, ज्येष्ठ-आषाढ अर्थात् ग्रीष्म ऋतु में विद्वेषण, श्रावण-भाद्रपद अर्थात् वर्षाऋतु में स्तंभन, आश्विन-कार्तिक अर्थात् शिशिर

ऋतु में मारण, मार्गशीर्ष-पौष में शान्ति कर्म और माघ-फाल्गुन अर्थात् हेमन्त ऋतु में पुष्टि कर्म करने चाहिए।

शास्त्रों के उक्त प्रकार के वर्गीकरण सामान्य बुद्धि से भी तत्-तत् प्रयोगों के लिए उपयुक्त ऋतुयें हैं। हमारी आन्तरिक प्रकृति बाह्य प्रकृति के साथ एकरूप हो जाती है हमारे शरीर पर वातावरण की अनुकूलता बहुत प्रभावशाली रूप से सफलता प्रदान करने के लिए तत्पर रहती है। आयुर्वेद की दृष्टि से तथा शरीर की प्रकृति की दृष्टि से वसन्त ऋतु की मादकता, आकर्षण-वशीकरण के लिए उपयुक्ततम रहती है। वसन्त ऋतु में समस्त चराचर कफ प्रकृति के उग्र रहने के कारण रजोगुण से ग्रस्त रहते हैं। रजोगुण होता है सृष्टि का चालक। व्यक्ति की चित्तवृत्ति में विलास और कामुकता का प्रभाव बढ़ा रहता है इसलिए बाह्य प्रकृति द्वारा बढ़ावा देने पर आकर्षण-वशीकरण सरल-स्वल्प समय साध्य हो जाता है। जिसपर प्रयोग करना हो वह मन से शृंगारिक अनुभूतियों से अनुप्राणित तो प्रकृति के प्रभाव से ही रहता है ऐसे समय में मन्त्र उस व्यक्ति की विचारधारा को व्यक्ति विशेष की ओर आकृष्ट कर देता है। ग्रीष्म ऋतु में स्वाभाविक रूप से रूक्षता रहती है। संसार को संयोजन करने की क्षमता सरसता स्नेह-शीलता में रहती है। ग्रीष्म में सारा स्नेह सूख जाता है, जलाशयों में मिट्टी तड़क जाती है, पादप सूख जाते हैं अतः ऐसी ऋतु में विद्वेषण कर्म बाह्य प्रकृति के बढ़ावे से शीघ्र सम्पन्न होता है। वर्षाऋतु में यद्यपि प्रकृति जलधाराओं से चलायमान बन जाती है पर इस समय धरती माता ऋतुमती होती है और गर्भ धारण किया करती है। समस्त वनस्पतियाँ और नाना प्रकार के पेड़-पौधे इसी ऋतु के फल होते हैं अतः स्तम्भन इस ऋतु का प्रकृति-सिद्ध कर्म है। हेमन्तादि ऋतुओं में पुष्टि कर्म का आधार भी ऐसी ही अन्तर्बाह्य की स्वाभाविक प्रतीति प्रकृति का रहस्य है जिसे हम जानते हैं।

एक दिन में भी छः ऋतुयें भोगी जाती हैं इसलिए जिसे मन्त्र सिद्ध है वह उन कर्मों के लिए उस समय साधन कर ले जो समय उस

कार्य के लिए ऊपर बताया गया है। दिन मान में ऋतुओं का क्रम इस प्रकार है—दोपहर से पहले वसन्त, मध्याह्न में ग्रीष्म, तीसरे पहर में वर्षा, सन्ध्या काल में शिशिर, अर्ध रात्रि में शरद और उषाकाल में हेमन्त ऋतु रहती है।

मन्त्र और तिथि—ऋतु के अनन्तर तिथियों का विचार किया जाता है। वशीकरण में सप्तमी, आकर्षण में तृतीया और त्रयोदशी, उच्चाटन में द्वितीया और षष्ठी, स्तम्भन में चतुर्थी, चतुर्दशी और प्रतिपदा, सम्मोहन मे अष्टमी और नवमी, मारण में पंचमी, एकादशी, द्वादशी और पूर्णिमा तिथि सिद्धिदायक रहती हैं।

मन्त्र और वार—शनिवार को वशीकरण, रवि को मारण, बुध को उच्चाटन, मंगल को विद्वेषण, शुक्र को सम्मोहन, गुरुवार को आकर्षण और सोमवार को स्तम्भ करना आशु सिद्धिदायक रहता है।

यद्यपि ज्योतिष की दृष्टि से वार और तिथि युक्त मुहूर्त मिलना सरल नहीं होता क्योंकि ऋतु दो महीने तक चलती है और तिथि, वारादि अत्यल्प कालिक होते हैं। किसी दिन वार मिल जाता है तो तिथि नहीं मिलती और तिथि मिल जाती है तो वार नहीं मिलता पर इसका अर्थ यह नहीं होता कि अपेक्षित मुहूर्त आता ही नहीं है अथवा सर्वशुद्ध मुहूर्त के बिना एक या दो आधारों के मिलने पर प्रयोग किया ही नहीं जाता। ऋतु में तिथि उपयुक्त मिलती है और वार विपरीत प्रभावकारी नहीं है तो अनुष्ठान करने में कोई दोष नहीं होता इसका स्पष्टार्थ यह हुआ कि वशीकरण का प्रयोग करने वाले को वसन्त ऋतु में उपयुक्त तिथि को अपना अनुष्ठान कर देना चाहिए लेकिन ऐसा न हो कि उस तिथि को मारण या विद्वेषण कर्म के उपयुक्त वार पड़ रहा हो। साधारण रूप से तिथि वार आदि को क्रमिक महत्त्व दिया जाना चाहिए पर अभीष्ट मुहूर्त महीनों तक नहीं मिले तो उसमें एक पाद की अनुपयुक्ता—दोष या विरोध पूर्णतः नहीं—भी चल सकती है।

इन षट कर्मों के अतिरिक्त अनुष्ठानों में तारा नक्षत्र, कुलाकुलादि

चक्रों का मिलान करके देख लेना अधिक सुन्दर रहता है। मन्त्र के सम्बन्ध में भारतीय ऋषि बहुत सावधान थे क्योंकि यह सूक्ष्म का विज्ञान था। शब्द के सहारे ध्वनि के प्रतीकों और मानवीय विद्युत् के जागरण से वातावरण किंवा स्थूल जगत् की वैद्युतिक व्यवस्था से विबिध कार्य सम्पादन करने का अतीन्द्रिय साधन था इसलिए सर्वांग शुद्धता प्राप्त करने का आग्रह ऋषिजनों का अवश्य था और इसके लिए उन्होंने सभी सम्बन्धित अंगों की छान-बीन की थी। विश्वास और अनुभव के आधार पर यदि मन्त्र के सम्बन्ध में वर्णित सभी सावधानियों को बरता जाता है, अनुकूलता-प्रतिकूलता का विचार करके देख लिया जाता है तो व्यक्ति को मन्त्र की साधना में कोई सन्देह नहीं रहता तथा वह उपलब्धि चिर स्थायी रहती है। मुहूर्त के साथ ही अपना चन्द्रमा आदि भी देख लें। यथाशक्ति इन पूर्व साधनाओं और सावधानियों के साथ ग्रहण किया गया मन्त्र सिद्ध देवता की तरह सहायक होता है और देवताओं को सत्यसन्ध बतलाया गया है वे सदा साधक का कार्य पूरा करने में तत्पर रहते हैं।

मन्त्र के दोष—ग्रहीत मन्त्र के अनुष्ठान करते समय साधक का कर्त्तव्य होता है कि मन्त्र दोषों का सावधानीपूर्वक निराकरण कर ले। मन्त्र के अर्थात् मन्त्रोपासक के आठ दोष होते हैं। पहला दोष है अभक्ति। यद्यपि इस पुस्तक के पाठक अब तक मन्त्र के भाषा शास्त्रीय, वैज्ञानिक और यतिपरक विश्लेषण को पढ़ चुके हैं और इन रहस्यों को समझ लेने के पश्चात् मन्त्रों को केवल शब्द समूह या भाषा के वाक्य मात्र मान लेने की भूल वे नहीं कर सकते फिर भी यदि कोई व्यक्ति मन्त्र को भाषा मात्र समझता है तो यह अभक्ति है। किसी दूसरे के मन्त्र को श्रेष्ठ और अपने को निम्नकोटि का मानता है तो यह भी अभक्ति है अर्थात् इन दोनों स्थितियों में मन्त्र में मन्त्र भावना और श्रद्धा नहीं रह पाती। श्रद्धा नहीं होने से मन्त्र की साधना फलवती नहीं होती।

अक्षर भ्रान्ति—साधना का दूसरा दोष है अक्षर भ्रान्ति। साधक

भ्रमवश अक्षरों में विपर्यक कर जाय अथवा अधिक जोड़ दे तो अक्षर-भ्रान्ति दोष होता है। उदाहरण के लिए 'भार्या रक्षतु भैरवी' के स्थान पर 'भार्यां भक्षतु भैरवी' का जप अक्षर भ्रान्ति के दोष में ही गिना जाएगा।

लुप्त—तीसरा दोष लुप्ताक्षरता का है। साधक मन्त्र ग्रहण करने के समय असावधानीवश या जप करते समय किसी अक्षर को भूल जाता है, छोड़ देता है तो लुप्त दोष होता है।

छिन्न—मन्त्र में प्रयुक्त सयुक्त अक्षर का एक अंश टूटता हुआ-सा हो तो छिन्न दोष होता है।

ह्रस्व—दीर्घ वर्ण के स्थान पर ह्रस्व वर्ण का प्रयोग ह्रस्व दोष होता है। मारवाड़ी लोग गधे को गदा बोलते हैं यहाँ ध के स्थान पर द का प्रयोग अथवा पंजाबियों के छुट्टी शब्द को छुटि बोलने में ह्रस्व दोष होता है। भाषा में कुछ भी होता हो मन्त्र व्यवहार के कारण ध्वनि और रूप में परिवर्तन धर्मा नहीं होते इसलिए जो अक्षर जिस रूप में, जिस लय में बोला जाता है उसीमें बोला जाना चाहिए। किसी दीर्घ मात्रा को ह्रस्व मात्रा के रूप में बोलना भी इसी दोष के अन्तर्गत आता है।

दीर्घ—ह्रस्व से विपरीत स्थिति वाला दीर्घ दोष हुआ करता है। छोटी मात्रा को बड़ी मात्रा के रूप में बोलने पर अथवा अल्प प्राण अक्षरों को महाप्राण की तरह बोलने पर दीर्घ दोष होता है।

कथन—मन्त्र एक नितान्त गुप्त रहस्य है। मन्त्र शब्द का दूसरा अर्थ गोपन ही होता है अतः मन्त्र का प्रकाशन कथन दोष की श्रेणी में आता है। किसी भी स्थिति में व्यक्ति को अपना मन्त्र प्रकाशित नहीं करना चाहिए।

स्वप्न कथन—यदि कोई व्यक्ति अपने मन्त्र को स्वप्न में किसी दूसरे को बतलाता है तो स्वप्न कथन का दोषी होता है।

इन दोषों के विभिन्न फल सामने आते हैं। कई बार साधक को चित्त विक्षेप हो जाता है, किसीका शरीर क्षीण होने लग जाता है,

किसीको अर्थ हानि होती है, किसी के परिवार जनों को आधि-व्याधि सताने लगती है अर्थात् जो मन्त्र व्यक्ति के कल्याण का मार्ग खोलता था, ऋद्धि-सिद्धि प्रदान करता था वही अशुभ बन गया। नियम पूर्वक उपासना करने पर भी यदि विपरीत लक्षण और अशुभ फल मिलता है तो व्यक्ति को चाहिए कि वह अपने मन्त्र का और साधना का आत्म-निरीक्षण करे और उपर्युक्त दोषों में से कोई दोष दिखाई दे तो उसका प्रायश्चित करके विधि पूर्वक पुनः अनुष्ठान करे इन प्रायश्चितों का विवरण क्रमशः दिया जा रहा है।

दोष निवारण—अभक्ति होने पर (कई बार साधक अन्य मनस्क होकर जप करता है और उसे अपेक्षित समय में सफलता नहीं मिलती तो उसे अपने मन्त्र के प्रति अरुचि हो जाती है) साधक को बहु जप, होम और चान्द्रायण आदि व्रत करके दूर रहना चाहिए। व्रत-उपवास से काया निर्मल होगी और बहु जप से मन्त्र के प्रति श्रद्धा उत्पन्न होगी जब श्रद्धा का उदय हो जाय तो मन्त्र साधन पुनः विधिवत् प्रारंभ कर देना चाहिए। ऐसा करने पर मन्त्र की सिद्धि शीघ्र ही होती है।

अक्षर भ्रान्ति होने पर व्यक्ति अपने गुरु के पास जाकर पुनः मन्त्र ग्रहण करे। गुरु के न होने पर गुरु पुत्र से, गुरु पुत्र भी सुलभ न हो तो गुरु के कुलवाले किसी योग्य व्यक्ति से और वह भी न मिले तो किसी सदाचारी और गुरु पद के उपयुक्त व्यक्ति से पुनः मन्त्र ग्रहण करे। शेष दोषों के सम्बन्ध में भी यही व्यवस्था है।

मन्त्र के संस्कार—मन्त्र के दस संस्कार होते हैं। जनन, जीवन, ताडन, बोधन, अभिषेक विमलीकरण, आप्यायन, तर्पण, दीपन और गुप्ति। जनन-संस्कार के लिए कुंकुम, रक्त चन्दन अथवा भस्म द्वारा धातु पात्र में मातृका यन्त्र अंकित करे। शक्ति मन्त्र से रक्त चन्दन और और शिव मन्त्र से भस्म द्वारा मातृका यन्त्र लिखकर मन्त्र का संस्कार करे। 'हैं सौ' इस मन्त्र को कर्णिका करके दो-दो स्वर द्वारा केसर अंकित करना चाहिए फिर आठ पत्तों वाला कमल लिखकर उन पर अष्टवर्ग लिखे, पद्म के बाहर की ओर एक चतुष्कोण और चार द्वार

बनावे। यन्त्र के चारों ओर 'वं' ओर चतुष्कोण के कोणों में 'ठं' लिखना चाहिए। तदन्तर क से म तक भाषा के पाँचों वर्ग य से व तथा श से ह तक और ल तथा क्ष वर्णों को पूर्व की ओर से प्रारंभ करके ईशान कोण तक अष्ट दल पद्म के आठों पत्तों की आकृतियों पर लिखे। चतुष्कोण में 'ठं' और चतुर्द्वार में 'वं' लिखे। इस यन्त्र को उक्त प्रकार से पूर्ण करने पर मन्त्र का जनन संस्कार होता है।

उपरिलिखित यन्त्र में वर्णित सभी अक्षरों को 'ओं' के साथ जोड़ कर एक-एक अक्षर का सौ-सौ बार जप करने से मन्त्र का जीवन संस्कार होता है। कोई-कोई इस जप संख्या को सौ के स्थान पर दस भी बताते हैं। मन्त्र का तीसरा संस्कार ताडन होता है। ताडन में मन्त्र के सभी अक्षरों को किसी पात्र में रक्त चन्दन अथवा कुंकुम से लिख-कर प्रत्येक वर्ण को किसी भी चन्दन के पानी से 'वं' बोलकर (बोलता हुआ) प्रत्येक अक्षर को सौ बार ताड़ित करे यही ताड़न संस्कार कहलाता है।

बोधन संस्कार में मन्त्र के अक्षरों को पृथक्-पृथक् लिखकर मन्त्र में जितने अक्षर हों उतने ही लाल कनेर के पुष्पों से प्रत्येक अक्षर का हनन करे। हनन करते समय लाल कनेर के पुष्पों के साथ 'रं' बीज मन्त्र का जप करता जाय।

मन्त्र का छठा संस्कार है अभिषेक। इसमें भी मन्त्र के सभी अक्षरों को लिखकर मन्त्र के अक्षरों की जितनी संख्या है उतने लाल कनेर के पुष्प (मान लीजिए किसी मन्त्र में दस अक्षर हैं तो प्रत्येक अक्षर के लिए दस-दस पुष्प लेने होंगे और प्रत्येक अक्षर पर उस मन्त्र के उच्चा-रण के साथ ताड़ित या हत करने होंगे इस तरह कुल एकसौ फूल होंगे) द्वारा 'रं' इस बीज मन्त्र से सभी वर्णों को अभिमन्त्रित करके पीपल के पत्ते से मन्त्र के जितने अक्षर हों उतने ही बार पानी से सींचना पड़ेगा यही अभिषेक संस्कार है।

विमलीकरण संस्कार में व्यक्ति को अपने अतएव अपने उपास्य मन्त्र में संसर्ग दोष जनित, कायिक, वाचिक और मानसिक मलों को

को दूर करना पड़ता है। अभीष्ट मन्त्र के दिव्य स्वरूप का सुषुम्णा नाड़ी के मूल और मध्य में ध्यान करे तथा 'ओम् ह्रौं' इन बीज मन्त्रों का जप करने से व्यक्ति के तीनों मल धुल जाते हैं। इस विधि से मन्त्र का विमलीकरण होता है। तीन प्रकार के मलों के सम्बन्ध में शास्त्रांतरों में लिखा है कि स्त्री संसर्ग से प्राप्त मल मायिक होते हैं, पुरुष में उत्पन्न होने वाले मल कर्मण कहलाते हैं तथा दोनों मलों के संयुक्त रूप को आनव्य मल कहते हैं। उपरिलिखित विधि से ये तीनों मल नष्ट हो जाते हैं और मन्त्र का विमलीकरण हो जाता है।

सोना और कुशा अथवा पुष्प मिले पानी से 'ओम् ह्रौं' इस ज्योति-मय मन्त्र द्वारा नष्ट करने को आप्यायन कहा जाता है।

तर्पण संस्कार में ज्योतिमय मन्त्र में देय मन्त्र की अक्षरों की संख्या जितनी बार ही प्रत्येक वर्ण का तर्पण करना पड़ता है। अर्थात् मूल ध्यान ज्योतिमय मन्त्र में रहे और तर्पण अभीष्ट मन्त्र का किया जाय। जिस तरह कोई व्यक्ति किसी कुर्सी पर बैठा हुआ है तो कुर्सी के ध्यान सहित उस व्यक्ति का चिन्तन करना। तर्पण में यह ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि शक्ति मन्त्र में शहद् से, विष्णु मन्त्र में कपूर मिले पानी से और शिव मन्त्र में दूध से। अभिषेक संस्कार में भी यह व्यवस्था समीचीन रहेगी।

दीपन में 'ओम् ह्रीं श्रीं' इन मन्त्रों के जप के साथ साधक श्रद्धा के साथ यह भावना करे कि इस समय जप से उसका मन्त्र परम तेज सम्पन्न हो रहा है।

दसवाँ साधन है गुप्ति। मन्त्र इतना गोपनीय होता है कि उसे स्वप्न में भी किसीको कहने पर दोष लगता है अतः प्रयत्नपूर्वक मन्त्र को गुप्त रखने को ही गुप्ति कहते हैं। किसी भी स्थिति में मन्त्र को प्रकाशित नहीं करने से उसका गुप्ति संस्कार होता है।

उपरिवर्णित संस्कारों की सामान्य स्थिति में कोई आवश्यकता नहीं होती। गुरु के द्वारा विधिपूर्वक दिया गया और शिष्य के द्वारा श्रद्धा-भक्ति सहित लिया गया मन्त्र इन सारे संस्कारों से स्वतः ही

अलक्षित रूप से संस्कृत हो जाया करता है।

व्यक्ति का कुल देवता एक हुआ करता है। परम्परागत रूप से विभिन्न कुलों में कुल देवता की मान्यता भारत में प्रचलित है। अच्छा रहे यदि व्यक्ति अपने कुल देवता को ही इष्ट के रूप में पूजे किन्तु यदि यह संभव नहीं हो रहा हो तो दूसरे देवता को इष्ट के रूप में स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है। क्योंकि ये सारे रूप एक से ही उद्भूत हैं और अन्त में सब एक में ही समाहित हो जाते हैं तथा व्यक्ति की पसंद और कार्य के अनुकूल दूसरे देवताओं की उपासना में कोई दोष नहीं होता। कुल देवताओं की मान्यता के पीछे एक बहुत बड़ा कारण रहा है कि समस्त भारत तन्त्र युग में महामाया के विभिन्न स्वरूपों का क्षेत्र मान लिया गया जैसे किसी क्षेत्र में शाकम्भरी, किसी में कामाख्या, किसी में चामुण्डा, किसी में त्रिपुर सुन्दरी आदि विग्रह पूजा के विषय बन गये। तत्वतः इनमें कोई अन्तर नहीं था, नहीं है पर लोगों ने अपने दृष्टिकोण एवं सुविधानुसार एक की अनेक रूपों में प्रतिष्ठा कर ली।

कुल देवता से भिन्न देवता को इष्ट मानने में कोई भी रहस्य रहा हो यह लोकाचार और शास्त्र मर्यादा की दृष्टि से निषिद्ध नहीं है। यद्यपि एक मत है कि कुल देवता से भिन्न का मन्त्र ग्रहण नहीं करना चाहिए फिर भी कुल देवता का सम्मान यथावत् रखते हुए यदि कोई व्यक्ति किसी विशेष उद्देश्य को लेकर देवता विशेष की उपासना करता है तो इससे कोई हानि नहीं होती। वास्तविक स्थिति तो यह है कि आज के जमाने में लोगों को कुल देवता का पता ही नहीं रहता।

किसी व्यक्ति ने कई देवताओं का मन्त्र साधन कर रखा है तो उसे उन सबको नमस्कार नित्य करना चाहिए, पूजनार्चन भी किन्तु जप उसीके करे जिसके प्रति शंका हो कि जप नहीं करने से अमुक देवता रुष्ट हो जाएगा यह व्यवस्था हरि तत्त्व दीधिति ने दी है।

अनुभव और शास्त्रीय निर्देश के अनुसार यह मान लिया गया है कि उपयुक्त व्यक्ति का दिया हुआ और विधि पूर्वक साधना किया गया मन्त्र सफल होता है। मन्त्र के जप के लिए जो संख्या शास्त्रो ने दी है

वह अन्तिम नहीं है क्योंकि किसीको उस संख्या से कम जप करने पर ही मन्त्र सिद्धि हो जाती है तो किसीको नहीं होती ऐसी स्थिति में जिसे मन्त्र सिद्ध हो जाता है वह व्यक्ति नियत संख्या के जप करे ही और जिसे सफलता नहीं मिली है वह उतनी ही संख्या में जप फिर करे, दुबारा जप करने पर भी सफलता नहीं मिले तो तीसरी बार करे। तीसरी बार पर भी यदि मन्त्र सिद्ध नहीं होता है तो उसे ये सात उपाय करने चाहिए।

मन्त्रों के उपाय—मन्त्रों के इन उपायों का निर्देश स्वयं शंकर ने किया है। व्यक्ति का लक्ष्य मन्त्र साधना है अतः वह इन उपायों को क्रमिक रूप से करे जिस उपाय से मन्त्र सिद्धि हो जाती है वहीं आगे के उपाय रोक देने चाहिएँ, इन उपायों की सामान्य रूप से कोई आवश्यकता नहीं होती। विशेष परिस्थिति में ये उपाय अचूक हैं और इनसे मन्त्र को सिद्ध होना ही पड़ता है। वे उपाय हैं—भ्रामण, रोधन, वशीकरण, पीडन, पोषण, शोषण और दाहन।

भ्रमण में मन्त्र के जितने अक्षर हों उतने कोष्ठक या त्रिकोण बनाकर भोजपत्र पर शिलाजीत, कपूर, खस, कुंकुम और चन्दन से मन्त्र के प्रत्येक अक्षर के साथ 'वं' वायु बीज जोड़कर लिखे। लिखकर इस मन्त्र को दूध, घी, शहद और जल में छोड़ दे। तदन्तर यथाशक्ति श्रद्धापूर्वक इसके जप करे, जप का दशांश हवन और षोडशोपचार अथवा पंचोपचार से पूजा करे।

भ्रमण की सूक्ष्म वैज्ञानिकता ऊपर लिखे विधान से स्पष्ट हो जाती है। मन्त्र भारतीय विज्ञान की दृष्टि से सचेतन है, अतः उसे गतिशील करने के लिए वायु बीज से संयुक्त किया गया है। दूध, घी और शहद तथा जल तत्त्वों के प्रतीक हैं, इसलिए मन्त्र की गतिशीलता इस अनुष्ठान में सिद्ध हो जाती है।

भ्रमण से मन्त्रसिद्ध हो ही जाता है। यदि न हो तो रोधन करे। रोधन में मन्त्र के आदि और अन्त में 'ऐं' का सम्पुट लगाकर यथासंभव जप किया जाता है।

रोधन से मन्त्र सिद्धि नहीं हो तो वशीकरण किया जाना चाहिए। भोजपत्र पर धतूरे का बीज, मैनसिल, कूट, लाल चन्दन और मेंहदी के रस से मन्त्र को लिखे। लिखकर इस मन्त्र को गले में बाँध ले यह वशीकरण है।

यदि कोई मन्त्र वशीकरण से भी सिद्ध नहीं हो तो मन्त्र का पीडन करना चाहिए। पीडन में मन्त्र का मानसिक जप करके आक के दूध से उस मन्त्र को लिखकर पैर से पीटे और मन्त्र के उच्चारण के साथ-साथ हवन करे।

पोषण में मन्त्र को गाय के दूध से भोजपत्र पर लिखकर हाथ में पहने।

पोषण से सिद्धि न मिलने पर शोषण किया जाता है। अभीष्ट मन्त्र के आदि और अन्त में 'वं' का सम्पुट लगाकर यथाशक्ति जप करे फिर हवन करके हवन की भस्म से इसी मन्त्र को भोजपत्र पर लिखे। इस भोजपत्र को किसी ताबीज में रखकर गले में बाँध ले।

शोषण से सफलता न मिलने पर दाहन किया जाता है। दाहन में 'रं' अग्नि बीज का आदि मध्य और अन्त में योग करके जप करना पड़ता है। जप करने पर इसी मन्त्र को अलसी के तेल से भोजपत्र पर लिखकर कन्धे पर बाँध ले।

इन उपायों को क्रमिक रूप से किया जाना चाहिए। मेरी दृष्टि से इन उपायों की आवश्यकता अपवाद रूप में पड़ती है। इनका उल्लेख विषय का शास्त्रीय और समग्र विवेचन करने के उद्देश्य से किया गया है और इस आधार पर कि साधक की प्रबल पुरुषार्थवादिता के आगे सफलता को समर्पण करने के लिए विवश होना पड़े। मन्त्रों की परीक्षा करके, कुलाकुलादि चक्रों से अनुकूलता जानकर, योग्य गुरु से मन्त्र दीक्षा लेकर चलने वाला साधक यदि मन्त्र सिद्धि प्राप्त नहीं करे तो उसके लिए ये अन्तिम और अमोघ उपाय हैं।

मन्त्रसिद्धि का लक्षण—मन्त्रसिद्धि का साधारण लक्षण है—कार्य सिद्धि। जो व्यक्ति जिस उद्देश्य को लेकर मन्त्राराधन के लिए अनु-

ष्ठान कर रहा है उस उद्देश्य की प्राप्ति ही मन्त्रसिद्धि है। देवता का दर्शन (स्वप्न में) प्रतिभा का स्फुरण, दिव्यानन्द की अनुभूति, मन की सात्विकता, वचन की सत्यनिष्ठता, चित्तशुद्धि, स्वप्न में किसी शुभ वस्तु के दर्शन अथवा सन्देश, दूसरे के विचारों का ज्ञान, सर्वलोक वशीकरण आदि भी मन्त्र सिद्धि के लक्षण हैं।

धन-धान्य का लाभ, पाण्डित्य की प्राप्ति, सांसारिक सुखों की सिद्धि, ख्याति, शुभ स्वप्न, लोक वशीकरण, वाणी का ओज, संकल्प में चमत्कार आदि लक्षण सामान्य सिद्धि के प्रतीक होते हैं।

उच्चतम सिद्धि जिस व्यक्ति को होती है वह ब्रह्म स्वरूप हो जाता है। सांसारिक सुखों के प्रति उसकी आसक्ति नहीं रहती। उसके दर्शन मात्र से रोग-शोक नष्ट हो जाते हैं। वह वचन, मन, कर्म से सत्य स्वरूप हो जाता है, अतः उसका कहा सत्य होकर रहता है।

मन्त्र का अपना विज्ञान है। यद्यपि शास्त्रकारों ने मन्त्रों का स्वरूप निश्चित कर दिया है जिससे साधक को निश्चित कार्य के लिए तैयार मन्त्र मिल जाय। मन्त्रों का सूत्र होता है। आयुर्वेद में जिस तरह प्रत्येक औषधि का अपना गुण धर्म होता है उसी तरह प्रत्येक अक्षर अथवा शब्द का अपना प्रभाव और साध्य होता है इसलिए समझदार व्यक्ति अपने मन्त्र की परीक्षा उसी प्रकार कर लेता है। जिस प्रकार निष्णात वैद्य अपने नुस्खे की परीक्षा करके उसे कार्यानुरूप संशोधन-परिवर्धन करके तैयार कर लेता है। इसी दृष्टि से मन्त्रज्ञ अपने मन्त्र को निर्दोष कर लेता है इस दृष्टि से मन्त्र के आदि अथवा अन्त में जोड़े जाने वाले शब्दों का परिचय दिया जा रहा है।

मूल मन्त्र में आवश्यकतानुसार बीज मन्त्र और अन्त में स्वाहा, नमः, वषट्, वौषट्, फट् और हुम का प्रयोग किया जाता है। वशीकरण, आकर्षण और संतापकरण के लिए जपने योग्य मन्त्रों के अन्त में 'स्वाहा' का प्रयोग किया जाता है। हवन करने के लिए भी अभीष्ट मन्त्र में स्वाहा के साथ आहुति दी जाती है।

किसी देवता को प्रसन्न करने के लिए, पूजा करने में और शान्ति

पुष्टि कर्म में प्रयुक्त मन्त्रों के अन्त में 'नमः' का प्रयोग किए जाने का विधान है।

सम्मोहन, उद्दीपन, रोग-शान्ति, मारकेश की दशा शान्ति एवं पुष्टि करने के लिए किये जाने वाले मन्त्रों का अन्त 'वौषट्' शब्द से करना चाहिए।

सम्बन्ध विच्छेद, वैर कराना, मारण आदि कर्म के लिए विहित मन्त्रों के अन्त में 'हुम्' का प्रयोग आवश्यक है। उच्चाटन, विद्वेषण और मानसिक विकार उत्पन्न करने के उद्देश्य से जिन मन्त्रों का अनुष्ठान किया जाता है उनके अन्त में 'फट्' शब्द का योग करना पड़ता है।

विघ्नशान्ति और अशुभ ग्रहों के उत्पात का शमन करने के लिए मन्त्र के अन्त में 'हुं फट्' शब्द लगाना चाहिए।

मन्त्र के उद्दीपन के लिए तथा लाभ-हानि आदि कार्यों के लिए जिस मन्त्र की साधना की जाय उसमें **'वौषट्' शब्द को मन्त्र के अन्त में** जोड़ना चाहिए।

यदि किसी मन्त्र में नमः, स्वाहा, हुम् आदि शब्द पहले से जुड़े हैं और ऊपर लिखे अनुसार वे शब्द उन्हीं कामों के लिए उद्दिष्ट मन्त्र में हैं तो दुबारा न जोड़ा जाय।

जप करने वाले के लिए यह आवश्यक है कि वह दिन में एक बार उस मन्त्र देवता की पूजा अवश्य करे। पूजा के लिए यह नियम नहीं है कि वह जप के पहले ही की जाय अथवा बाद में ही। यह साधक की सुविधा और अभ्यास पर है। शास्त्र जप के पहले और जप के बाद भी पूजा करने को उचित मानते हैं।

शुद्धि—जप के लिए पाँच प्रकार की शुद्धियाँ आवश्यक हैं। आत्मशुद्धि—स्नान, उपयुक्त आहार, सदाचार, सत्य, परोपकार आदि से होती है। स्नान शुद्धि का अर्थ है कि जिस स्थान पर बैठकर जप किया जा रहा है वह दूषित नहीं हो, पानी से धोकर गाय के गोबर से लीपकर अथवा अन्य उचित उपायों से शुद्ध स्वच्छ किया गया हो, आस-

पास अपवित्र वस्तुयें नहीं हों, मन्त्र जप में बाधा डालने वाले उपकरण नहीं हों। तीसरी मन्त्र शुद्धि है। मन्त्र शुद्धि का विवरण मन्त्रों के संस्कार में लिख दिया गया है। चौथी द्रव्य शुद्धि का अर्थ है कि पूजा में प्रयोग की जाने वाली सामग्री पवित्र हो और उसके लिए उचित मार्ग से पैदा किए हुए पैसे का ही उपयोग किया जाना चाहिए। पाँचवी शुद्धि देव शुद्धि होती है। देव शुद्धि का अर्थ होता है कि पूजा के लिए जिस देवमूर्ति को माना जाता है उसकी विधिवत् प्रतिष्ठा की जानी चाहिए तथा नित्य स्नान चन्दनादि द्वारा उसकी अर्चना करनी चाहिए, पूजा करते समय अथवा जप करते समय हाथ में सोने या चाँदी की अँगूठी होना हितकर होता है। अँगूठी धारण करने की सामर्थ्य किसी में नहीं हो तो कुशा (दाभ) का टुकड़ा ही हाथ में धारण किये रहे।

मन्त्र के जप की अथवा मालाओं की संख्या को गिनने के लिए अँगुलियों के जोड़, चावल, अनाज, फूल, चन्दन और मिट्टी के टुकड़ों का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए।

जप के समय निषिद्ध कार्य—जप करते समय आलस्य, भय, जम्हुआई, निद्रा, छींक, थूकना, गुप्तांगों का स्पर्श, क्रोध, पैर फैलाना, उकड़ू बैठना, दूसरों से बात करना और झूठ बोलना आदि अवगुणों का विशेष रूप से त्याग कर दे।

आसन—जप अथवा पूजन के लिए आसन आवश्यक है। बिना आसन के अथवा दूसरे के आसन पर बैठकर जप करना मना है। आसन के सम्बन्ध में शास्त्र का वचन है कि बांस के आसन पर बैठने से दरिद्रता, पत्थर के आसन पर बैठकर जप करने से व्याधि, छेद वाले काठ के तख्ते आदि पर बैठने से दुर्भाग्य, तिनकों पर बैठने से धन और यश का नाश पत्तों पर बैठने से चित्त भ्रम और भूमि पर बिना आसन बैठने से दुःख प्राप्त होता है।

कम्बल का आसन सब कामों में उत्तम माना गया है, काम्य कर्मों में लाल रंग का कम्बल श्रेष्ठ माना गया है। कुशा के आसन पर बैठने से जप सफल होता है। मृग चर्म जैसे रोम युक्त आसनों का विशेष

अनुष्ठान में ही प्रयोग किया जाता है। वैसे मृग चर्म पर बैठने से मस्सों की बीमारी नहीं होती अन्यथा अधिक बैठक करने वालों के यह बीमारी प्राय: हो जाया करती है।

जप करते समय किस दिशा में मुख करके बैठना चाहिए इस सम्बन्ध में शास्त्रीय मर्यादा है वशीकरण-सम्मोहन-आकर्षण कर्म में पूर्व की तरफ, धन प्राप्ति के लिए किये जाने वाले जप में पश्चिम की तरफ, आयु रक्षा के लिए अथवा शान्ति पुष्टि के लिए किये जाने वाले जप में उत्तर की तरफ मुख करके बैठना चाहिए। मारण, विद्वेषणादि कर्मों के लिए दक्षिण दिशा में मुंह करके बैठना लाभदायक रहता है।

माला—जप के लिए माला का होना आवश्यक है। संख्या के बिना जप करने का कोई अर्थ नहीं निकलता, इसलिए एक सौ आठ, चौवन अथवा सत्ताईस मनकों की माला होनी चाहिए। हर मनके के बाद धागे में गाँठ दी गई हो। माला यदि किसी समय सुलभ नहीं हो तो कर माला से ही जप करना चाहिए। करमाला का नियम यह है कि तीसरी अँगुली के दूसरे पोर (अँगुली की गाँठ नहीं) से एक तीसरे पोर पर दो, चौथी अँगुली के अन्तिम (नीचे वाले) पोर पर तीन, बीच वाले पर चार, ऊपर ही ऊपर वाले पर पाँच, तीसरी अँगुली के (जिस अँगुली से माला का प्रारम्भ किया था) ऊपर वाले पोर पर छ:, दूसरी अँगुली के ऊपर वाले पोर पर सात, बीच वाले पर आठ, इसी अँगुली के नीचे वाले पोर पर नौ, तथा पहली अँगुली के नीचे वाले पोर पर दस माना गया है। दाहिने हाथ के अँगूठे से क्रमश: एक-एक स्थान पर अँगूठा रखकर जप करता जाय इन जपों की गिनती बाँयें हाथ की अँगुलियों पर इसी क्रम से करते जाने से एक सौ आठ संख्या पर एक माला हो जाती है।

वैष्णवों के लिए तुलसी की माला श्रेष्ठ मानी गई है वैसे तान्त्रिक प्रयोगों में कमलगट्टे की और रुद्राक्ष की माला सर्व कार्य साधक मानी गई है। तान्त्रिक प्रयोगों में तथा पुष्टि कर्म में मूँगा, हीरा और मणियों की माला श्रेष्ठ है। शंख की माला परहित या स्वयं के कल्याण के

लिए किए जाने वाले मन्त्रों में सदय: फलदायी रहती है। स्फटिक की माला आत्म ज्ञान के लिए और सरस्वती की उपासना के लिए अनुकूल पड़ती है। आकर्षण एवं वशीकरण में हाथी दांत की माला उपयुक्त रहती है।

जप करते समय माला को गौमुखी में रखकर या किसी कपड़े से ढककर रखना चाहिए। एक बार माला को पूरा करके उसे पलट लेना चाहिए तथा सुमेरु को (माला समाप्त होने पर) आँख एवं सिर से लगाकर दूसरी माला प्रारम्भ करनी चाहिए। मन्त्र जप करते समय माला को इतनी दूर रखना चाहिए कि वह श्वास की वायु को छू सके, प्रात:काल किए जाने वाले जप में माला नाभि के पास, मध्यान्ह में हृदय के समीप और सन्ध्या समय में नासिका के पास रखना ठीक रहता है।

संकल्प—किसी भी प्रकार का जप करने के पहले हाथ में जल लेकर संकल्प लेना चाहिए। संकल्प में देशकाल मन्त्र, बीज, छन्द, देवता, ऋषि का नामोल्लेख करके मन्त्र-अनुष्ठान का उद्देश्य बताते हुए संख्या का निर्देश करता हुआ हाथ में लिए जल को धरती पर छोड़ दे। संकल्प की भाषा इस प्रकार है—

ओम् तत्सत् अदद्य······संवत्सरे मासानां मासोत्तमे···मासे शुभे·······पक्षे······तिथौ······वासरे······छन्द······देवता······बीजम्·····ऋषि·····मन्त्रस्य······कार्यार्थम······संख्या कं जपमहं करिष्ये। इन खाली स्थानों में क्रमश: विक्रम या शक संवत् की संख्या, महीने का नाम, पखवाड़े का नाम, तिथि का नाम, वार का नाम (इस काल परिचय के पश्चात् देश का नाम अर्थात् वह देश गंगा-यमुना के किस ओर है या किस सागर, तीर्थस्थान या पर्वत के किस ओर है इसका विवरण बोले) मन्त्र का छन्द हो उसका नाम, देवता का नाम, बीज का नाम, ऋषि का नाम, मन्त्र का नाम, काम का नाम और उस दिन किये जाने वाले जप की संख्या इन सबका विवरण बोलने से परिचय मिल जाता है और इस संकल्प से अनुष्ठान में निश्चय का

समावेश हो जाता है। विशिष्ट मन्त्रों में इन सब तथ्यों का विवरण दिया रहता है। यदि किसीको इन सारे विवरणों का ज्ञान नहीं हो तो उसे अपने मन्त्रदाता से या अधिकारी विद्वान् से ये सारे तथ्य जान लेने चाहिए। यदि कोई तथ्य ज्ञात नहीं हो तो उसे छोड़ देना चाहिए।

इस बात को नहीं भूलना चाहिए कि मन्त्र की सफलता गुरु अथवा ऋषि, बीज, छन्द, देवता, मन्त्र के परिचय बिना नहीं मिलती।

जितनी संख्या में जप किया जाय उसका दशांश हवन, हवन की दशांश तर्पण करना चाहिए तथा अन्त में श्रद्धा सहित ब्राह्मण भोजन कराकर सम्पूर्ण करे।

शास्त्रीय विमर्श

किसी भी मन्त्र का अनुष्ठान करने से पहले जिन सावधानियों की आवश्यकता होती है वे दूसरे अध्याय में लिख दी गई हैं फिर भी मेरा इतना प्रबल आग्रह नहीं है कि साधक उन सबका निर्वाह करे ही लेकिन उन सारी विधियों का निर्वाह एक तो साधक को असफलता से बचाता है, दूसरे साधक की जितनी बड़ी आकांक्षा होती है उतनी ही सावधानी आवश्यक होती है। मान लीजिए कोई मारण कर्म करने जा रहा है तो उसको बड़ी सावधानी बरतनी होगी। अन्यथा वह प्रयोग साधक को ही ले बैठेगा। ऐसी ही स्थिति देवी के प्रयोगों में है। देवी स्वयं शक्ति का रूप है, अतः उसकी उपासना जगदम्बा के रूप में ही करनी चाहिए। यदि कहीं कोई विक्षेप हो जाता है अथवा त्रुटि हो रही होती है; तो उसका समाधान मन्त्रोपदेशक से अथवा किसी मर्मज्ञ विद्वान् से करा लेना चाहिए। अस्वस्थतावश यदि अनुष्ठान प्रारम्भ करने के बाद उसे नहीं निभाया जाय तो किसी ब्राह्मण को बुलाकर वह अनुष्ठान जारी रखा जा सकता है। किसीके मरने अथवा जन्म लेने के कारण सूतक आदि लग जायें तो प्रयोग को अल्पकाल के लिए रोक देना चाहिए। यदि कोई साधक प्रमादवश प्रारम्भ किए प्रयोग को छोड़ देता है तो इससे बड़ा दोष लगता है। भले ही साधक

ने किसी उद्देश्य से अनुष्ठान प्रारम्भ किया हो और बीच में ही सफल हो गया हो तो अनुष्ठान को अधूरा छोड़ने से मन्त्र का अपमान होता है, अतः यथाविधि सम्पूर्ण करना ही चाहिए। अनुष्ठान को बीच में छोड़ देने पर प्रायश्चित करने का विधान है। मूल मन्त्र के एक या दस हज़ार जप करके, उपावास करना चाहिए तथा देवता से क्षमा याचना करके उसी अनुष्ठान को फिर से प्रारम्भ करना चाहिए।

किसी भी देवता की उपासना में, ऐसी उपासना में जिससे हम कोई मनोरथ नहीं रखते, मुहूर्त की कोई बाधा नहीं होतीं। ऐसे मन्त्र भक्ति योग में माने जाते हैं और भक्तियोग में शास्त्रीय व्यवस्थायें शिथिल मानी जाती हैं। दरअसल मुहूर्त का यह प्रभाव होता है कि उस नक्षत्र, तिथि, योग, वार और चन्द्रमा के कारण प्रारंभ किया अनुष्ठान निर्विघ्न समाप्त होता है तथा उस मन्त्र में विशेष प्रभाव उत्पन्न हो जाता है, सारा तन्त्रशास्त्र मुहूर्त पर ही चलता है, अत: यह मुहूर्त की व्यवस्था को निष्काम साधना के समय ही शिथिल किया जाना चाहिए।

किसी विशेष अनुष्ठान करते समय व्यक्ति अपने नित्य कर्म को नहीं छोड़े, क्योंकि नित्य कर्म सदा चलने वाला है और विशेष प्रयोग किसी खास समय तक ही। इन प्रयोगों में स्नान, एकान्त, मौन, सदाचार और वाणी का संयम आवश्यक होता है, क्योंकि इनसे मन एकाग्र रहता है और मन की एकाग्रता से मन सिद्धि जल्दी होती है। किसी भी साधना में देवता का मन्त्र बोलकर उसका ध्यान करना और पन्चोपचार से (धूप, दीप, नैवेद्य, स्नान और नमस्कार) पूजा अवश्य करनी चाहिए। दीपक आवश्यकतानुसार तेल या घी का होना चाहिए। घी की आवश्यकता हो तो गाय का ही काम में लेना चाहिए, यदि न मिले तो भैंस का काम में लिया जा सकता है। अनुष्ठान यदि किसी पुस्तक का हो तो उस पुस्तक के मन्त्रों से अन्यथा मन्त्र जाप का हो तो उस मन्त्र से दशांश हवन अवश्य करना चाहिए। अनुष्ठान चालू रहते समय अधिक गरिष्ठ पदार्थों का सेवन यह सोचकर नहीं करना चाहिए कि

इससे दिन-भर भूख नहीं लगेगी। भोजन हल्का और सुपाच्य हो। संध्या समय दूध का सेवन वर्जित नहीं हैं। भूमि पर सोना, ऊन या रेशम के वस्त्र काम में लेना अच्छा रहता है। यदि साधक अहर्निश (रात-दिन) उसी मन्त्र का मानसिक जप करता रहे तो इससे मन्त्र जल्दी सिद्ध होता है और साधक को विलक्षण अनुभव होते हैं।

मारण, विद्वेषण और उच्चाटन जैसे कर्मों को अभिचार कर्म कहते हैं। इस पुस्तक में इन प्रयोगों को छोड़ दिया गया है, क्योंकि प्रथम तो ऐसे प्रयोगों में व्यक्ति को सावधानी अधिक रखनी पड़ती है, दूसरे ऐसे प्रयोग किसी योग्य गुरु की देख-रेख में ही सीखने चाहिएँ, तीसरे इस प्रकार के प्रयोगों के अनुचित स्थान पर कर देने से कर्त्ता और दाता दोनों को पाप लगता है। फिर भी इसका मतलब यह नहीं है कि ऐसे प्रयोग हैं ही नहीं या उनकी साधना संभव ही नहीं है। मारण प्रयोग में 'पक्षिराज सहस्त्र नाम' का अनुष्ठान अचूक और अति समर्थ है। इसका अनुष्ठान ही पाँच दिन का होता है, पर यह अत्यन्त उग्र और परम-शक्ति सम्पन्न प्रयोग होता है। इसका प्रयोग भूलकर भी नृसिंह के मन्दिर में नहीं करना चाहिए। वैसे इसका अनुष्ठान दूसरे कामों के लिए भी किया जा सकता है, पर मेरा परामर्श यही है कि साधारण आदमी ऐसे प्रयोगों को सुन-सुनाकर ही न करें। दुर्गा सप्तशती से भी छहों कर्म किये जाते हैं पर अभिचार कर्मों में दुर्गा को महाकाली के रूप में पूजा जाता है और वह महाकाल का रूप इतना हल्का नहीं होता कि हर कोई उसे सहन कर जाय।

लोग चाहे कुछ भी कहें मेरा विश्वास ऐसा है कि किसी भी देवता को प्रत्यक्ष प्रकट होने के लिए आग्रह न किया जाय और न उन पर विश्वास किया जाय। जो यह कहते हैं कि देवी हमें दर्शन देती है। सच बात यह है कि किसी भी देवता का (अनुभव) ज्ञान हमें जो होगा वह इन्द्रियों के द्वारा ही होगा और इन्द्रियों में इतनी शक्ति नहीं कि वे उसका ज्ञान कर लें। भगवान् कृष्ण ने अपने वास्तविक रूप को दिखाने के पहले दिव्यचक्षु दिए थे। स्वयं परम हंस उसका दर्शन करके

विक्षिप्त हो गए थे। होता यह है कि जब किसी देवता की कृपा होती है तो हमें उसके मौजूद होने का आभास होता है। कृष्णकी उपासना में धनुष धारण किया हुआ परम सुन्दर कोई व्यक्ति दिखता है तो हनुमान की उपासना में वानर दिखता है। दरअसल ये सब हमारे मन की सात्विक कल्पनायें हैं, अन्यथा अर्ध जागृत अवस्था में, स्वप्न में या भ्रम में देवता का हमारी कल्पना के अनुकूल आभास हो जाना ही बड़े पुण्य का फल होता है और इसे किसी प्रयोग की सफलता के रूप में ही माना जाना चाहिए, अन्यथा सत्य तो यह है कि उस विराट् का कोई रूप नहीं होता, लेकिन जब सांसारिक व्यक्ति उसे याद करते हैं तो वह उनकी इच्छानुसार ढलकर अपना आभास दे जाता है।

वाल्मीकि रामायण का सुन्दर काण्ड

भगवान् राम के चरित्र में दुहरा बल है। चरित्र बल भी और शब्द बल भी। चरित्र को शक्ति सम्पन्न बनाया राम के उदात्त कर्म ने और आदि कवि वाल्मीकि ने उस कथा को शब्द शक्ति दी। भगवान् राम के पावन चरित्र का श्रवण-मनन करने से व्यक्ति को सर्वार्थ सिद्धि और आत्मज्ञान होता है पर सांसारिक इच्छाओं की पूर्ति के लिए भी पाठ में मूल पुस्तक के किसी या किन्हीं पद्यों का सम्पुट लगाया जाता है। सम्पुट का अर्थ होता है एक बार सम्पुट के रूप में प्रयोग किया जाने वाला पद्य, फिर पाठ का पद्य, फिर वह सम्पुट का पद्य। सम्पुट पद्य या श्लोक का ही नहीं होता, किसी बीज मन्त्र का भी लगाया जा सकता है।

वाल्मीकि कृत रामायण में सात काण्ड हैं। इन सातों काण्डों का विशेष उद्देश्य के लिए प्रयोग किया जाता है। सन्तान प्राप्ति के लिए बालकाण्ड, धन प्राप्ति के लिए अयोध्या, अनुसन्धान और अंवषेण में सफलता प्राप्त करने के लिए अरण्य, राज्यादि की पुनः प्राप्ति के लिए किष्किन्धा, सम्पूर्ण कार्य सिद्ध करने के लिए सुन्दर और धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष प्राप्त करने के लिए उत्तर काण्ड का प्रयोग

किया जाता है। सुन्दर काण्ड के लिए कहा जाता है—

सुन्दरे सुन्दरो रामः सुन्दरे सुन्दरी कथा।
सुन्दरे सुन्दरी सीता सुन्दरे किम् न सुन्दरम्॥

सुन्दर काण्ड में पवन पुत्र हनुमान जी का चरित्र ही अधिकतया है, अतः इसे हनुमदुपासना के रूप में ही किया जाय। अर्थात् मुख्य मूर्ति श्री हनुमान जी की ही रखी जाय। इतना अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि हनुमान जी दास्य भाव के प्रतीक हैं, अतः उनकी अर्चना करने के पहले भगवान् राम का स्मरण और पूजन करने से विशेष और शीघ्र फल मिलता है। कोई व्यक्ति खो गया हो अथवा किसीके सम्बन्ध बिगड़ गए हों और उनको सुधारने की आवश्यकता महसूस की जाय तथा किसी परीक्षा में सफलता की कामना हो तो सुन्दर-काण्ड तुरन्त फल देने वाला होता है। हनुमान वीर विद्यार्थी वर्ग के सच्चे सहायक हैं, अतः ऊपर लिखी परिस्थितियों में सुन्दरकाण्ड का पाठ अत्यन्त उपयुक्त प्रयोग रहेगा।

पाठक्रम

सुन्दर काण्ड में ६८ सर्ग हैं। इसके प्रयोग की ५ विधियाँ हैं। २ विधियाँ ६८ दिन की, २ विधियाँ ३४ दिन की और १ विधि ११ दिन की है। इनमें सात, पाँच और एक पाठ हो सकता है। पहली विधि में सात-सात सर्ग रोज के हिसाब से पाठ करे तो अड़सठवें दिन अड़सठवाँ सर्ग आ जाता है। पाठ सात होते हैं। दूसरी विधि में चौदह सर्ग प्रति दिन के क्रम से चौंतीसवें दिन अड़सठवाँ सर्ग आ जाता है और पाठ वे ही सात होते हैं (पाठ से आशय है सुन्दरकाण्ड की आवृत्ति) दूसरी विधि में पाँच आवृत्तियाँ होती हैं। यदि पाँच सर्ग प्रतिदिन के क्रम से पाठ किया जाय अथवा दस सर्ग प्रतिदिन के क्रम से पाठ किया जाय तो क्रमशः अड़सठवें और चौतीसवें दिन अड़सठवाँ सर्ग आ जाता है। पाँचवीं विधि में ग्यारह दिन का प्रयोग होता है। इसमें पहले दिन एक सर्ग का और चौथे दिन चार सर्ग का तीसरे

दिन तीन सर्ग का और चौथे दिन चार सर्ग का इस क्रम से पाठकिया जाता है। ग्यारहवें दिन तेरह सर्गों का पाठ करने पर सुन्दर काण्ड का एक पाठ पूर्ण हो जाता है।

इन सारे क्रमों में सात सर्ग से चलने वाला और अड़सठ दिन वाला प्रयोग प्रायः विद्वान् लोग किया करते हैं। सुन्दर काण्ड का प्रयोग कलियुग में (दुर्गापाठ) सप्तशती के प्रयोग की तरह अमोघ और निश्चित फल देने वाला होता है। मैंने स्वयं इसका प्रयोग कर के देखा है।

पाठ विधि

प्रयोगकर्ता शुभ मुहूर्त देखकर सुविधा जनक एकान्त स्थान में, हनूमान जी के मन्दिर में अथवा घर के किसी एकान्त कमरे में हनूमान जी का चित्र अथवा मूर्ति रखकर उनसे प्रार्थना करे। प्रयोग कर्ता का मुख पूर्व अथवा उत्तर की ओर होना चाहिए। स्थान को पवित्र करके स्वयं का नित्यकर्म करने के पश्चात् प्रयोग के लिए आसन पर बैठ जाय। पुस्तक की और हनूमान जी की प्रतिमा की अर्चना करे। अर्चना षोडश उपचार से करे। षोडशोपचार में आवाहन, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, स्नान, गन्ध, अक्षत, वस्त्र, नैवेद्य, फल, ताम्बूल, पुंगीफल, धूप, दीप, दक्षिणा और नमस्कार माने जाते हैं।

पाठारंभ के पूर्व हाथ में जल लेकर संकल्प ले। संकल्प में देश काल का संकीर्तन करके……गोत्रोत्पन्न……शर्मा, गुप्त, वर्मा (यथोचित) हम् मम (किसी दूसरे के लिए किया जा रहा हो तो यजमानस्य)……अभिलषित कामना सिद्ध्यर्थं श्री रामचन्द्र प्रीति पूर्वक श्री हनुमान्प्रीतये वाल्मीकीय रामायणान्तर्गत सुन्दरकाण्डस्य अष्टषष्टि दिवसान्तर्गत प्रति दिनम्……सर्गाणाम् पाठं करिष्ये।

फिर अंगन्यास करे।

अस्य श्री सुन्दरकाण्ड महामन्त्रस्य भगवान् हनूमान् ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः जगन्माता सीता देवता श्रीं बीजम् स्वाहा शक्तिः सीतायै

सर्ग प्रतिदिन के क्रम से ६८ दिन का पाठक्रम—७ पाठ

दिन	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७
सर्ग	७	१४	२१	२८	३५	४२	४९	५६	६३	२	९	१६	२३	३०	३७	४४	५१
दिन	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४
सर्ग	५८	६५	४	११	१८	२५	३२	३९	४६	५३	६०	६७	६	१३	२०	२७	३४
दिन	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१
सर्ग	४१	४८	५५	६२	१	८	१५	२२	२९	३६	४३	५०	५७	६४	३	१०	१७
दिन	५२	५३	५४	५५	५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	६३	६४	६५	६६	६७	६८
सर्ग	२४	३१	३८	४५	५२	५९	६६	५	१२	१९	२६	३३	४०	४७	५४	६१	६८

५ सर्ग प्रतिदिन के क्रम से ६८ दिन का पाठक्रम—५ पाठ

दिन	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७
सर्ग	५	१०	१५	२०	२५	३०	३५	४०	४५	५०	५५	६०	६५	२	७	१२	१७
दिन	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४
सर्ग	२२	२७	३२	३७	४२	४७	५२	५७	६२	६७	४	९	१४	१९	२४	२९	३४
दिन	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१
सर्ग	३९	४४	४९	५४	५९	६४	१	६	११	१६	२१	२६	३१	३६	४१	४६	५१
दिन	५२	५३	५४	५५	५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	६३	६४	६५	६६	६७	६८
सर्ग	५६	६१	६६	३	८	१३	१८	२३	२८	३३	३८	४३	४८	५३	५८	६३	६८

१० सर्ग प्रतिदिन के क्रम से ३४ दिन का पाठक्रम—५ पाठ

दिन	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७
सर्ग	१०	२०	३०	४०	५०	६०	२	१२	२२	३२	४२	५२	६२	४	१४	२४	३४
दिन	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४
सर्ग	४४	५४	६४	६	१६	२६	३६	४६	५६	६६	८	१८	२८	३८	४८	५८	६८

१४ सर्ग प्रतिदिन के क्रम से ३४ दिन का पाठ क्रम—७ पाठ

दिन	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७
सर्ग	१४	२८	४२	५६	२	१६	३०	४४	५८	४	१८	३२	४६	६०	६	२०	३४
दिन	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४
सर्ग	४८	६२	८	२२	३६	५०	६४	१०	२४	३८	५२	६६	१२	२६	४०	५४	६८

कला क्रम से ११ दिन का पाठक्रम—१

दिन	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
सर्ग	१	३	६	१०	१५	२१	२८	३६	४५	५५	६८

कीलकम् सीता प्रसाद सिद्धयर्थे सुन्दरकाण्ड पारायणे जपे विनियोगः।

इसी विनियोग का अंगन्यास करे। भगवद् हनुमद् ऋषये नमः शिरसि, अनुष्टुप् छन्द से नमः मुखे, जगन्मातृ सीता देव्यै नमः हृदये, श्रीं बीजाय नमः गुह्ये, स्वाहा शक्तये नमः पादयोः सीता कीलकायै नमः सर्वांगे।

करन्यास—सीतायै अंगुष्ठाभ्यां नमः, विदेहराज सुतायै तर्जनी-भ्याम् नमः, रामसुन्दर्यै मध्यमाभ्यां नमः, हनुमत् समाश्रितायै अनामि-काभ्यां नमः, भूमि सुतायै कनिष्ठिकाभ्यां नमः, शरण भजे कर तल कर पृष्ठाभ्याम् नमः।

पाठ के अन्त में या आदि में मूल रामायण का १ या ५ या ७ या ११ पाठ करना आवश्यक है। जिस दिन प्रयोग की पूर्णाहुति हो उस दिन सुन्दर काण्ड के प्रत्येक श्लोक से हवन करे। ब्राह्मण भोजन कराकर १-१ केला और दक्षिणा देने से अनुष्ठान सम्पन्न होता है।

'सीं श्रीं सीतायै नमः' इस मन्त्र की एक माला जपे यदि समय हो तो इस मन्त्र को

'काममस्य त्वमेवैकः कार्यस्य परिसाधने।
पर्याप्तः परवीरघ्न! यशस्यस्ते बलोदय॥'

अथवा

'रामदूत महावीर वेगवान् मारुतात्मज!
कपीन्द्र वाञ्छितं देहि त्वामहं शरणं गतः॥'

किसी भी श्लोक से सम्पुटित करके माला जपे। माला की संख्या विषम होनी चाहिए।

सम्पुट

यद्यपि भगवान् महावीर के अमोघ चरित्र के समान ही सुन्दरकाण्ड का प्रयोग भी तुरन्त और निश्चित फल देने वाला होता है फिर भी पाठ का प्रयोग संपुट सहित करने से विशिष्ट और त्वरित फल मिलता है। नीचे विशेष कार्यों के लिए संपुट के पद्य लिखे जाते हैं। यथा

समय और कार्य व आवश्यकता के अनुसार सम्पुट लगाकर अनुष्ठान करना ठीक रहेगा।

शत्रुनाश के लिए

'जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभि पालितः॥'

अथवा

'दासोऽहम् कौशलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्ट कर्मणः।
हनुमान् शत्रु सैन्यानाम निहन्ता मारुतात्मजः॥

अथवा

'न रावण सहस्रं मे युद्धे प्रतिबलं भवेत्।
शिलाभिभर्वैः प्रहरतः पादपैश्च सहस्रशः॥'

अथवा

'अर्दयित्वा पुरीं लंकाम् अभिवाद्य च मैथिलीम्।
समृद्धयर्थे गमिष्यामि मिषतां सर्वं रक्षसाम्॥'

दुःख और चिन्ता दूर करने के लिए

'हनुमान यत्नमास्थाय दुःखक्षय करो भव।
तस्य चिन्तयतो यत्नो दुःख क्षय करोऽभवत्॥'

अनिष्ट निवारण के लिये

'यथा च स महाबाहु मम् तारयति राघवः।
अस्माद्दुःखाम्बु संरोधात् त्वम् समाधातुमर्हति॥'

मुकदमे वगैरह में विजय प्राप्त करने के लिए

'बलैः समग्रैर्यदि मां रावणं जित्य संयुगे।
विजयी स्वां पुरीं यायात्तु मे स्याद्यशस्करम्॥'

विवाहादि के लिए

'स देवि नित्यं परितप्यमानः, त्वामेव सीतेत्यभिभाषमाणः।
दृढ़व्रतो राजसुतो महात्मा, तवैव लाभाय कृत प्रयत्नः।'

ग्रह या दुःस्वप्न शान्ति के लिये

'ओम् जूँ सः मां पालय सः जूम् ओम्'

इस मन्त्र का सम्पुट लगाये।

विद्यालाभ, और विजय अरिष्ट निवारण के लिए सुन्दरकाण्ड का अनुष्ठान जितना अचूक है उतना ही भूतबाधा के लिए। कलियुग में देवी, भैरव, गणेश और हनुमान की उपासना ही फलदायिनी होती है। जिस मकान में प्रेतात्माका प्रकोप हो उसे पानी से धुलवा कर गोबर वगैरह से लीपकर दीपक की साक्षी से सुन्दरकाण्ड का प्रयोग कराने से बाधा शान्त होती है।

विशिष्ट उपासना

हनुमानजी को प्रसन्न करने के लिए नीचे बहुत कुछ विशिष्ट मन्त्र और उनकी उपासना का उल्लेख किया जा रहा है। यदि साधक की पूर्ण निष्ठा हो तो सातवें या नवें दिन कपीश्वर स्वयं प्रकट होकर दर्शन देते हैं। साधक को सौभाग्यवश ऐसा अवसर मिले (उक्त रीति से करने पर कपीश्वर को प्रकट होना ही पड़ता है) तो डरना नहीं चाहिए, परम प्रसन्न होकर श्रद्धा भक्ति सहित उनकी पूजा करनी चाहिए। देव दर्शन ही सबसे बड़ी सफलता होती है। कपीश्वर की मूर्ति विशाल हो तो साधक को प्रार्थना करनी चाहिए कि वे भक्त के साहस के अनुकूल रूप धारण करें। यह मन्त्र सिद्ध होने पर इससे सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं। किसी भी मन्त्र के नियत संख्या तक जप करने पर अथवा पुरश्चरण करने पर वह मन्त्र सिद्ध हो जाता है। मन्त्र के सिद्ध हो जाने के सम्बन्ध में पहले के अध्यायों में बता दिया गया है कि अमुक प्रकार के स्वप्न आने पर मन्त्र को सिद्ध मान लिया जाय।

किसी देव मन्दिर में (हनुमान जी के) अथवा एकान्त में नदी के किनारे कुशा के आसन पर बैठकर सीता सहित राम का ध्यान करे। तदन्तर संकल्प लेकर विनियोग करे। विनियोग इस प्रकार होगा। हाथ में (संकल्प की तरह) जल लेकर मुंह से बोले—अस्य श्री हनुमन्मन्त्रस्य रामचन्द्र ऋषिः जगती छन्दः हनुमद्देवता हं बीजम् हुम् शक्तिः श्री हनुमत्प्रसन्नतार्थे सहस्त्र। दश सहस्र संख्या के जपे विनियोग अंगन्यास भी इसी बीज मन्त्र का करना चाहिए जैसे हां नमः हृदये, हीम् नमः शिरसि, हूम् नमः शिखायाम्, हैम् नमः नेत्रयोः, हौम् नमः मुखे, हः नमः अस्त्राय फट्।

ताम्बे के किसी पात्र में आठ पत्तों वाला कमल बनाकर उसके मध्य भाग में निम्न मन्त्र लिखे तथा कमल के आठ पत्तों पर सुग्रीव, लक्ष्मण, नल, नील, अंगद, कुमुद, केसरी और जाम्बवान का नाम लिखकर उनकी पूजा करे। लक्ष्मी प्राप्ति की कामना वाला इस तरह का यन्त्र लाल चन्दन की लकड़ी से लाल चन्दन से ही लिखे फिर उन सबकी पूजा करके एक लाख बार, जितने दिनों में सुविधापूर्वक जप हो सके, जप करे जिस दिन पूर्णाहुति होती है उस दिन साधक को चाहिए कि वह अत्यन्त पवित्रतापूर्वक तल्लीन होकर अञ्जनी नन्दन का मन्त्र जपता रहे। मन, वचन से पवित्र रहकर इन्द्रियों पर संयम रखे और मन्त्र को जपता चला जाय। आखिरकार रात्रि में अञ्जनी सुत प्रकट होते हैं और अभीष्ट सिद्धि का वरदान प्रदान करते हैं। साधक को इसमें न धैर्य खोना चाहिए न अविश्वास रखना चाहिए। विश्वास सबसे बड़ी वस्तु हुआ करती है। हाँ, यह मन्त्र बीज मन्त्र से युक्त है। अतः इसके उच्चारण में बड़ी सावधानी बरतनी चाहिए। इस मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर किसी भी काम के समय इसका साधारण-सा जप करने पर कार्यसिद्धि हो जाती है।

मूल मन्त्र है 'हम् हनुमते रुद्रात्मकाय हुम् फट्' मन्त्र सिद्ध हो जाने पर जितनी संख्या में जप गए थे उनका दशांश हवन करना चाहिए। हवन में तिल, चीनी, अष्टगन्ध और गौ घृत उत्तम रहता है।

दूसरा मन्त्र है 'हम् पवन नन्दनाय स्वाहा'। यह मन्त्र हनुमान जी की पवनसुत के रूप में कल्पना करता है। पवन जिस तरह सर्वत्र व्याप्त है, अत्यन्त बलशाली है वैसी ही गुण-कल्पना इस मन्त्र में है। आदि में हम् और अन्त में स्वाहा करने से मन्त्र का स्वरूप दूसरा हो जाता है। इस मन्त्र के एक लक्ष जप करने पर यह मन्त्र सिद्ध होता है तथा कपीश्वर के दर्शन हो जाते हैं। हनुमान कलियुग के लिए परम उपयोगी और सुविधा से सिद्ध हो जाने वाले देवता हैं। इस मन्त्र का साधन ग्यारह दिन तक किया जाता है। दस हज़ार जप प्रतिदिन करने से दस दिन तक एक लाख की संख्या पर जप पहुँच जाता है। ग्यारहवें दिन दशांश हवन, ब्राह्मण भोजनादि करने पर प्रयोग सम्पूर्ण होता है।

अनुष्ठान करने की जो व्यवस्था अब से पहले बताई गई है वह सभी अनुष्ठानों में समान रहती है। हनुमान जी की उपासना मध्याह्न अथवा रात्रि में अधिक अच्छी रहती है। उपरोक्त मन्त्र की साधना करने वाले के लिए विशेष विधि यह है कि वह स्नान करते समय इसी मन्त्र से पानी डाले और अपने आसन पर बैठकर भूतशुद्धि के लिए कम से कम तीन प्राणायाम करे। अ से लेकर अः तक के स्वर बोलकर बोलता हुआ श्वास भीतर खींचे इसे पूरक प्राणायाम कहते हैं, क से लेकर म तक पच्चीस अक्षर का उच्चारण करता हुआ श्वास को रोके रहे इसे कुम्भक प्राणायाम कहते हैं। य से क्ष तक के अक्षर बोलता हुआ श्वास को बाहर निकाल दे इसे रेचक प्राणायाम कहते हैं। इस प्रकार के प्राणायाम से भूतशुद्धि होती है। तदनन्तर पञ्चोपचार या षोडशोपचार से पूजन करे। इस विधि से करते रहने पर मन्त्र सिद्ध हो जाता है। सातवें दिन और आठवें दिन यदि कोई विशेष बात नहीं दिखाई दे तो नवें दिन साधक कि सातवें दिन की तरह इस मन्त्र का अनवरत जप करता रहे। रात्रि में जगता हुआ वीर हनुमान के ध्यान में तल्लीन रहे तथा वातावरण को परम पवित्र और सुगन्धित बनाये रखे। इस दिन तक आते-आते साधक मन से पवित्र हो जाता है और मन्त्र की शक्ति प्रदीप्त होने लगती है ऐसी स्थिति में यदि मन्त्र का जप

ग्रौर ग्रधिक एकाग्रता से किया जाय तो उससे सिद्धि मिलकर ही रहती है।

भाग्यवश ग्रञ्जनीनन्दनी प्रसन्न होकर प्रकट होते हैं तो उनको भक्ति भावना से प्रणिपात प्रसाद द्वारा प्रसन्न करे तथा मनोकामना निवेदन करे सातवें दिन यदि यह स्थिति न ग्रायें तो ग्रत्यन्त करुण भाव से ग्रशरण दीन बनकर हनुमान को पुकारे ग्रौर इसी भावना से इस मन्त्र का जप करे तो नवें दिन पवन नन्दन निश्चित रूप से दर्शन देते हैं। इस तरह जब मन्त्र सिद्ध हो जाता है तो उसका किसी भी काम के लिए प्रयोग किया जा सकता है। इस मन्त्र का विनियोग पहले वाले मन्त्र का ही है।

दुर्भाग्यवश यदि कोई कारागार में पड़ जाय तो उसे ग्रपने बाँयें हाथ की हथेली पर दांयें हाथ से यह मन्त्र लिखना चाहिए। 'हरि मर्कट मर्कट वाम करे परिमुञ्चति मुञ्चति शृंखलिकाम्' लिख—लिखकर मिटाना चाहिए। विषम संख्या में ऐसे प्रयोग किए जाते हैं। ग्रर्थात् इस प्रकार लिखना ग्रौर मिटाना १, ३, ५, ७, ११, १३ ग्रादि बार करना चाहिए। इसके साथ ही एकाग्र भाव से इस मन्त्र का जप करते रहने से कारागार मुक्ति होती है, हाथ की हथकड़ियाँ ग्रौर पैर की बेड़ियाँ हट जाती हैं। इस मन्त्र में भगवान हनुमान का मर्कट ग्रौर हरि =हरण करने वाले के रूप में स्मरण करके यह निवेदन किया जाता है कि वे हमारी शृंखला को दूर करें। यह प्रयोग ग्रत्यन्त चमत्कारी है ग्रौर ग्रमोघ है।

तुलसी रामायण के प्रयोग

यों मन्त्र वैदिक, पौराणिक ग्रौर तान्त्रिक ही होते हैं पर किसी भी शब्दावली को मन्त्र बनाने के लिये देवता द्वारा ग्रथवा तपस्या द्वारा शक्ति सम्पन्न किया जाता है तुलसी की रामायण एक काव्य है पर उसके विशिष्ट स्थलों की चौपाइयों, दोहों ग्रौर सोरठों को काशी विश्वनाथ के बरदान द्वारा शक्ति सम्पन्न कर दिया गया है ग्रौर वे मन्त्र के रूप में

साधना का विषय बन सकती हैं इसमें सन्देह करने की कोई ग्रावश्यकता नहीं है। दूसरी बात यह भी है कि ग्राज संस्कृत मन्त्रों का शुद्ध उच्चारण उनकी साधना, उनकी कठिन विधि ग्रादि ऐसे हैं जिनको साधारण व्यक्ति नहीं निभा पाता इसलिए रामचरित मानस की पंक्तियाँ सर्व सुलभ होने के साथ-साथ ग्रधिक व्यक्तियों के लिए उपयोगी हो सकती हैं ग्रौर उनसे लाभ भी उतना ही मिल सकता है, मन्त्रों में जप ही सिद्धि दायक होता है ग्रौर मानसिक जप में स्नान, स्थान ग्रादि की उतनी पाबन्दी नहीं मानी जाती इसलिए व्यक्ति जितना जप करेगा उतनी ही सफलता मिलेगी। किसी विशेष कार्य के लिए किया गया प्रयोग दुहरा लाभ देता है, कार्य तो सफल होता ही है, उसके साथ भगवान् का नाम लेने का पुण्य भी ग्रर्जित होता है। जप चाहे मानसिक हो या श्रव्य उसे लय सहित (रामयण की चौपाई-दोहे ग्रादि में) करना चाहिए पर वह लय केवल मनोयोग करने तक ही सीमित हो ऐसा न हो कि राग प्रधान हो जाय ग्रौर उसके शब्द गौण बन जाएँ।

नीचे जो (मन्त्र) प्रयोग दिये जा रहे हैं वे विशिष्ट कार्यों के लिए हैं पर उनको कार्य सम्पूर्ण हो जाने बाद भी चालू रखा जा सकता है किन्तु कुछ समय के ही लिए दैनिक उपासना में इनका समावेश ग्रधिक लाभ कर नहीं होता।

ये प्रयोग सात्विक ग्रौर फलदायक हैं इसलिए इनके सम्बन्ध में जप की संख्या निश्चित करने के स्थान पर श्रद्धा ग्रौर विश्वास को मान्यता दी जाय ग्रौर इनको तब तक चालू रखा जाय जब तक कार्य सम्पन्न न हो। साधक को चाहिए कि वह भगवान् का ध्यान करता रहे, ग्रनन्य गति होकर उनके चरणों में समर्पित होने की भावना रखे ग्रपने कार्य को ग्रधिक रूप से स्मरण न करे।

ग्रधिक ग्रच्छा हो इस रक्षा रेखा के मन्त्र को पहले सिद्ध कर लिया जाय क्योंकि इससे प्रयोग में ग्रथवा प्रयोग कर्ता पर जो बाह्य विघ्न ग्रा सकते हैं उनसे बचाव हो जाता है, इसे सिद्ध करने की वही विधि है, जो दूसरे प्रयोगों की है। रक्षा रेखा के नाम से यह प्रारंभिक प्रयोग है।

मन्त्र है—

मामभि रक्षय रघुकुल नायक,
घृतवर चाप रूचिर कर सायक।

इसे बोलकर चौकोर रेखा पानी अथवा कोयले से खींच लेनी चाहिए जितनी दूर में आसन आ सके। आसन, ऊन, कुश अथवा रेशम का हो।

प्रयोग विधि

ये प्रयोग नियत जप संख्या के नहीं है अतः शुभ दिन देखकर रक्षा रेखा खींचकर साधक बैठ जाय। साधक का मुख पूर्व अथवा उत्तर दिशा में रहे। पहले दिन रात्रि को दस बजे बाद जिस भी किसी मन्त्र की साधना करनी हो उसका जप करता हुआ एक सौ आठ आहुति दे। प्रयोग शुरू करने के पहले भगवान् राम का स्मरण करके उनकी पंचोपचार अथवा षोडषोपचार से पूजा करे। हवन अष्टांग सामग्री से करे। अष्टांग हवन में—चन्दन का बुरादा, तिल, देशी घी, (गाय का हो तो अधिक अच्छा) देशी चीनी, अगर, तगर, नागर मोथा, कपूर, केसर, पंचमेवा, जौ और चावल होते हैं, पंचमेवा में अखरोट, बदाम, किशमिश, पिश्ता और काजू माने जाते हैं। केसर यथा शक्ति और घी-चीनी के लिए 'यथेच्छम् घृत शर्करा' कहा गया है। इन सारी वस्तुओं को एकत्रित करके एक सौ आठ आहुति दे। अनुमानतः इन सबकी समान मात्रा ले ले (केसर जैसे महर्घ पदार्थ में न्यूनाधिक भी हो तो कोई आपत्ति नहीं) एक किलो सामग्री में एक सौ आठ आहुति हो सकती हैं। जिस भी मन्त्र का प्रयोग करना हो उसीको बोलकर उसके अन्त में 'स्वाहा' शब्द जोड़ दे और स्वाहा के साथ ही अग्नि में आहुति दे दे। हवन में खेजडे-शमी-की लकड़ी, पलाश की लकड़ी, बिना पाथे गोबर के उपले प्रयोग किये जाएँ। वेदी के लिए विशेष बन्धन नहीं है। हाँ, स्वच्छ बालू से साधारण वेदी बनाकर (उदकेनाभ्युक्ष्य, गोमयेनोपलिप्य, श्रुवेणोल्लिख्य आदि संस्कार करके,) हवन करे। हवन करने से मन्त्र

जागृत हो जाता है फिर साधक प्रतिदिन प्रातः काल अथवा रात्रि में सोते समय उस मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करे। जप करने से पहले भगवान् श्री राम, सीता या हनुमान जो भी उस मन्त्र के देवता हों—का ध्यान कर ले और अन्त में वह जप उन्हींके दाहिने हाथ में समर्पित करने की भावना कर समाप्त कर दे। प्रयोग के चालू रहते सात्विक भावना का प्रवाह बना रहने दे और मन में यह पूर्ण विश्वास रखे कि भगवान् की कृपा से उसका कार्य सम्पूर्ण होगा ही। विशिष्ट कार्यों के लिए विशिष्ट मन्त्र हैं—

परीक्षा में सफलता के लिए

जेहि पर कृपा करहि जनु जानी, कवि उर अजिर नचावहि बानी।
मोरि सुधारिहि सो सब भाँती, जासु कृपा नहि कृपा अघाती॥

दूर गये व्यक्ति को बुलाने अथवा आकर्षण के लिए

जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू, सो तेहि मिलत न कछु सन्देहू।

विद्या प्राप्त होने के लिए

गुरु गृह गये पढ़न रघुराई, अलप काल विद्या सब आई।

विवाह के लिए

तब जनक पाइ वसिष्ट आयसु, ब्याह साज संवारि के।
माण्डवी श्रुत कीरति उरमिला, कुंअरि लई हंकारि के॥

मुकदमा जीतने के लिए

पवन तनय बल पवन समाना, बुद्धि विवेक विज्ञान निधाना।

धन प्राप्ति के लिए

जे सकाम नर सुनहिं जे गावहि, सुख सम्पति नाना विध पावहि।

सुख प्राप्ति के लिए

सुनहि विमुक्त विरत अरू विषई,
लहहि भगति गति सम्पति नई।

पुत्र प्राप्ति के लिये

प्रेम मगन कौशल्या निशिदिन जात न जान,
पुत्र सनेह बस माता बालचरित कर गान।

नौकरी मिलने के लिए

विश्व भरन पोषन कर जोई, ताकर नाम भरत अस होई।

शत्रु को मित्र बनाने के लिए

गरल सुधा रिपु करहिं मिताई, गोपद सिन्धु अनल सितलाई।

खोई चीज पाने के लिए

गई बहोर गरीब नेवाजू, सरल सबल साहिब रघुराजू।

विपत्ति दूर करने के लिए

सकल विघ्न व्यापहि नहि तेही, राम सुकृपा विलोकहि जे ही।

आधि-व्याधि दूर करने के लिए

हरन कठिन कलि कलुष कलेसू, महामोह निशि दलन दिनेशू।

दरिद्रता दूर करने के लिए

अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के, कायद धन दारिद दवारि के।

यात्रा की सफलता के लिए

प्रविसि नगर कीजे सब काजा, हृदय राखि कोसलपुर राजा।

विचार पवित्र रखने के लिए

ताके युग पद कमल मनावउ, जासु कृपा निरमल मति पावउ।

मुक्ति के लिए

सत्य सन्ध छांडे सर लच्छा, काल सर्प जनु चले सपच्छा।

हनुमान जी को प्रसन्न करने के लिए

सुमिरि पवन सुत पावन नामू, अपने बस करि राखे रामू।

राम के दर्शन प्राप्त करने के लिए

भगत बछल प्रभु कृपा निधाना, बिश्वबास प्रकटे भगवाना।

भक्ति प्राप्त करने के लिए

भगत कल्पतरू प्रनत हित, कृपा सिन्धु सुखधाम।
सोइ निज भगति मोहि प्रभु, देहु दया करि राम॥

अकल्पित और कठिन विपत्ति निवारण के लिए

दीनदयाल विरद संभारी, हरहु नाथ मम संकट भारी।

सभी रोग दोष की शान्ति के लिए

दैहिक दैविक भौतिक तापा, रामराज काहू नहि व्यापा।

ये प्रयोग तुलसी के दिये हैं और शंकर भगवान् ने इनमें शक्ति प्रवेश किया है, इनके सम्बन्ध में इतना निश्चय से कहा जा सकता है कि ये सिद्ध भले ही विलम्ब से हों पर इनमें कोई भूल चूक होने से किसी प्रकार का अनिष्ट नहीं होता। सिद्धि के लिए व्यक्ति को उतावला नहीं होना चाहिए। ये प्रयोग स्त्रियों के लिए भी सिद्धि देने वाले हैं पर रजस्वला अवस्था में न करने चाहिए।

इस संसार में व्यक्ति को सभी तरह के व्यवहार करने पड़ते हैं शत्रुता और मित्रता, स्नेह और द्वेष—इसीका नाम तो दुनिया है। शत्रुता प्रायः स्वार्थों का टकराव है, अहंकार की परिणति है और कुछ ऐसे व्यक्ति भी होते हैं जो शठता और शत्रुता से ही वश में आते हैं। राम जैसे शान्तिप्रिय और अकारण स्नेही को भी शठता और शत्रुभाव रखना पड़ा। संसार के लिए द्वेष जितना आवश्यक है उतना ही आवश्यक प्रेम और स्नेह भी पर शायद स्नेह की दुनिया अधिक विशाल है, शायद प्रेम की शक्ति सबसे बड़ी है। किसी व्यक्ति के साथ हुई शत्रुता को दूर करने के लिए अथवा प्रेम सम्बन्ध स्थापित करने के लिए वशीकरण का प्रयोग किया जाता है। मन्त्र शास्त्रों की प्रत्येक शाखा में तंत्रों में और यन्त्रों में वशीकरण के प्रयोग मिलते हैं। कई बार शत्रुता से जो काम नहीं होते वे प्रेम से हो जाते हैं और सच तो यह है कि आज के इस संसार में प्रेम की आवश्यकता सबसे अधिक है, प्रेम का वशीकरण ऐसा है जिसे मानव ही नहीं पशु-पक्षी और पेड़-पौधे तक जानते-मानते हैं। वशीकरण अपने प्रति प्रेम पैदा करने का प्रकार है आगे इस के प्रयोग दिए जा रहे हैं। ये प्रयोग क्रमिक हैं अर्थात् पहले के प्रयोग से सफलता यदि न मिले तो दूसरा, दूसरे से न मिले तो तीसरा और तीसरे से न मिले तो चौथा आदि। अन्त में जो प्रयोग हैं वे मेरे अनुभूत नहीं हैं पर वे ऋषियों द्वारा वर्णित हैं, उनकी प्रशंसा और प्रामाणिकता के बारे में बहुत जगह लिखा हुआ मिला है। उग्र और जटिल प्रयोग मैंने अनुभूत होने पर भी नहीं लिए हैं क्योंकि आज के व्यक्ति में इतना धैर्य, इतना समय और इतनी सावधानी नहीं है फिर उनमें गुरु की आवश्यकता पड़ती है। हाँ, इन प्रयोगों में जो इस प्रकरण में लिखे जा रहे हैं गुरु की इतनी अधिक आवश्यकता नहीं है पर किसी इष्ट को मानना परम आवश्यक है। इष्ट ही गुरु और देवता दोनों का काम पूरा कर देता है। इसके साथ ही मन्त्र में विश्वास और सिद्धि के प्रति

निश्चिन्तता मन में अवश्य रखनी चाहिए। पहला प्रयोग बिना किसी मन्त्र का है इसमें व्यक्ति की इच्छा शक्ति ही काम करती है। मैं यह मानने के लिए तैयार नहीं हूँ कि केवल इच्छा शक्ति से कार्य नहीं होता। इच्छा शक्ति अपने स्थान पर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तत्त्व है हठ योग, मैस्मरिज्म, हिप्नाटिज्म आदि इच्छा शक्ति को केन्द्रित मान कर ही चलते हैं। सवाल यदि है तो इतना ही कि इच्छाशक्ति को उद्दीप्त किस तरह किया जाय। अस्तु ! वशीकरण प्रयोगों में इतना निवेदन अवश्य करूँगा कि केवल शारीरिक वासना की पूर्ति के लिए इन प्रयोगों को करना उचित नहीं है। मन्त्र बड़े शक्ति सम्पन्न होते हैं इनके जरिए किसीको आकृष्ट करना और क्षुद्र स्वार्थ की पूर्ति करने का माध्यम करने से मन्त्र की नहीं साधक की अवनति होती है, उसे पाप लगता। मैं इसके प्रयोग करने की ऐच्छिकता साधक के विवेक पर छोड़ता हूँ। इन प्रयोगों को करने के पहले साधक पवित्र होकर अपने इष्ट देवता का स्मरण अवश्य कर ले और उनसे यह याचना कर ले कि वे उसे सफलता प्रदान करें। इष्ट को स्मरण करने के लिए मन्त्र या श्लोक याद न हो तो चाहे जिस भाषा में स्वच्छ हृदय और एकाग्र मन से प्रार्थना कर ले।

बिना मन्त्र के वशीकरण

व्यक्ति रात को सोते समय, हाथ-पांव धोकर उत्तर की ओर सिर करके सो जाय। अपने शरीर को बिल्कुल ढीला छोड़ दे और गंभीर श्वास ले। उस समय केवल श्वासों की गति में ही ध्यान केन्द्रित रहे। पाँच-सात श्वास लेने के बाद जब चित्त स्थिर हो जाय तो अपने इष्ट देवता का स्मरण करे, उनको प्रणाम करे और प्रयोग में सफलता देने की याचना करे। यदि उनके नाम याद हों तो ग्यारह या इक्कीस बार जप ले। अब जिस व्यक्ति का वशीकरण करना हो उसकी कल्पना करे और इतना ध्यानस्थ होकर सोचे कि जैसे वह व्यक्ति सामने खड़ा है और उसकी बात सुन रहा है। उस काल्पनिक मूर्ति को

वह पूरे विश्वास से कहे और अधिकार भरे स्वर में कहे—मैं तुमसे प्रेम करता हूँ, तुम्हें भी प्रेम करना पड़ेगा, मैं तुम्हें मन से चाहता हूँ, तुम्हें भी मुझे चाहना पड़ेगा, मैं तुम पर निछावर हूँ। ये वाक्य निरन्तर चार-पाँच दिन तक कहने पर उस व्यक्ति की आकृति पर इसके प्रभाव लक्षित होने लगेंगे अर्थात् जब उसकी कल्पना की जाएगी तो प्रसन्नता के, नाराजी के, तटस्थता के भाव उसके चेहरे पर प्रकट होने लगेंगे। यदि उस व्यक्ति के मुख पर नाराजी के या तटस्थता के चिह्न प्रकट हों तो उसे प्रसन्न करने के लिए प्रेम की भीख माँगी जाय। जिस दिन कल्पना की मूर्ति प्रसन्न दिखने लगेगी उसी दिन से उस व्यक्ति के मन में प्रेम का अंकुर फूटने लगेगा।

देवी मन्त्र द्वारा वशीकरण

वशीकरण के लिए दुर्गा सप्तशती का—

ज्ञानिनामपि चेतांसि, देवी भगवती ही सा।
बलादाकृष्य मोहाय, महामाया प्रयच्छति ॥

मन्त्र अचूक है प्रयोग करने के पहले भगवती त्रिपुर सुन्दरी का ध्यान करे, उनकी पंचोपचार से पूजन करके अपना मनोरथ निवेदन कर देना चाहिए। जिस व्यक्ति का वशीकरण करना हो उस व्यक्ति की मूर्ति अपने मन में कल्पित कर ले और उसीको सुनाकर इस मन्त्र का जप करे। प्रतिदिन पाँच-ग्यारह माला जपने से कार्यसिद्धि और मन्त्र-सिद्धि हो जाती है। एक बार मन्त्र सिद्ध होने पर दुबारा प्रयोग करने पर इतना श्रम नहीं करना पड़ेगा। वशीकरण में लाल रंग के फूल और आसन अच्छे रहते हैं।

सप्तशती द्वारा वशीकरण

शुभ दिन देखकर अथवा चैत्र और आश्विन के नवरात्रों में दुर्गा-सप्तशती का पाठ करे। धूप-दीप पाठ करे तबतक चलता रहे। प्रत्येक श्लोक के आदि और अन्त में ऊपर लिखे श्लोक का संपुट लगाकर पवि-

त्रता और श्रद्धा सहित नौ दिन तक परायण करे। नवें दिन नौ कुमारि-काओं का पूजन करके उनको भोजन कराकर लाल वस्त्र दे। नौ दिन तक पूर्ण ब्रह्मचर्य से रहे, सात्विक भोजन करे, धरती पर शयन करे और उक्त मन्त्र की एक सौ आठ आहुति देकर हवन करे। हवन में अष्टांग हवन की सामग्री ली जाय।

तान्त्रिक प्रयोग

सुनारों के यहाँ तोलने के काम आने वाली गुंजा (चिरमी) लाल रंग की होती है वैसी ही सफेद और आती है। जहाँ वह सफेद चिरमी हो उसकी जड़ रविवार पुष्य नक्षत्र को ले आवे। जिस दिन जड़ लेने जाय स्नान करके पवित्र होकर जाय तथा रास्ते में किसीसे बोले नहीं उस वृक्ष को पहले दिन जाकर निमन्त्रण दे आवे। जड़ को अपने वीर्य में भावना देकर जिस भी किसीको खिलादे वह वश में होता है।

चित्र द्वारा वशीकरण

जिस व्यक्ति का वशीकरण करना हो और यदि उसका चित्र सुलभ हो सके तो स्वस्थ होकर पलथी मारकर बैठ जाय। सामने उस व्यक्ति का चित्र रख ले। प्राणायाम द्वारा मन को एकाग्र करने की चेष्टा करे फिर विचारों को केन्द्रित कर ले। पूरे विश्वास के साथ यह भावना रखे कि यह व्यक्ति वश में आ रहा है, आना पड़ेगा। मन में ही उस चित्र को सम्बोधित करता हुआ बार-बार यह दोहराये कि मैं तुम पर अनुरक्त हूँ आओ! हम दोनों एक-दूसरे के मित्र बन जाएँ। धीरे-धीरे चित्र के द्वारा ही संकेत मिलने लगेंगे और जब अनुकूल संकेत मिलने लगें तो यह मान लेना चाहिए कि प्रयोग सफल हो रहा है और व्यवहार में भी यह जाहिर हो जायगा कि वह व्यक्ति आपकी ओर झुकने लगा है।

हाजरात

हाजरात मुसलमानी प्रयोग है। इसमें किसी निष्पाप बालक के

कजली चढ़ाई जाती है अथवा अँगूठे पर स्याही लगाकर उसमें देखने को कहा जाता है और आश्चर्य यह कि अँगूठे के नाखून में उसे सब कुछ दिखने लगता है। मैंने बचपन में ऐसा प्रयोग करते हुए एक व्यक्ति को देखा था और उस अबोध बालक ने, जो करीबन आठ-नौ वर्ष का रहा होगा, जो भी कुछ बतलाया वह सब सही निकला। यहाँ वही हाजरात का प्रयोग दिया जा रहा है। साधक आधी रात के वक्त या सुबह पश्चिम की तरफ मुँह करके बैठ जाय और उलटी माला से (उलटी का मतलब है सामान्य रूप से माला के मणियें आगे से पीछे जाते हैं इसमें पीछे से आगे सरकाये जाते हैं) एक सौ आठ बार जपे अर्थात् एक माला फेर ले। मन्त्र है—

'ख्वाजा खिज्र जिन्द पीर मैंदर मादर दस्तगीर मदत मेरा पीरान पीर करो घोड़े पर भीड़ चढ़ो हजरत पीर हाजर सो हाजर।'

इक्कीस दिन तक जप करने से यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है फिर जिस दिन इसको चढ़ाना हो उस दिन सुबह आठ बजे से पहले सीधे-सच्चे बालक को लाकर उसके दाहिने हाथ के अँगूठे में स्याही (काली) लगा दे। लड़का स्नानदि करके पवित्र रहे। नाखून की काली स्याही में उस लड़के को देखने के लिए कहे और साधक से जब लड़का यह कहे कि मुख दिखने लग गया तो उससे कहे कि मुख दिखना बन्द हो जाय और चौगान नजर आवे जब चौगान दिखने लगे तो कहा जाय दो आदमी आवें, वे आ जाएँ तब दो और, फिर दो और फिर दो। इस तरह आठ आदमी आ जाएँ तो उनसे कहा जाय झाड़ू वाले को बुलाओ, झाड़ू लगवाओ, भिश्ती को बुलवाओ छिडकाव कराओ, फर्शवाले से फर्श मँगवाओ, बिछवाओ, दो कुरसी और तख्त मँगवाओ, गद्दी बिछवाओ। यह सब हो जाने पर कहा जाय कि पीरान पीर साहब से जाकर अर्ज कराओ कि आपका···(साधक का नाम) भक्त आपको याद कर रहा है सो मुन्शी साहब को साथ लेकर पधारो। जब पीरान पीर आकर कुर्सी पर बैठ जाएँ तो मुन्शी साहब से अर्ज करे कि पीरान पीर साहब से अर्ज करो कि···भक्त आपसे···(प्रश्न) काम पूछता है। लड़के को

उत्तर मिलेगा अगर लड़का वह उत्तर न समझे तो मुन्शी साहब से कहे कि हमें···भाषा में लिखकर समझाओ या दिखा दो और मुन्शी साहब लड़के को इच्छित भाषा में लिखकर दिखला देंगे। काम पूरा होने पर पीरान पीर साहब से जाने की अर्ज करे और तकलीफ देने के लिए माफी माँग ले और अँगूठे की स्याही धो डाले।

ध्यान देने योग्य—जिस समय साधक इस मन्त्र को सिद्ध करे और जिस समय किसी बालक पर स्याही चढावे उस समय सारे समय भर लौंग, इलायची, लोबान की धूप खेता जाय अर्थात् एक मिट्टी के बर्तन में अँगारे या उपले रखकर उनपर लौंग, इलायची, लोबान डालता जाय।

बगलामुखी की उपासना

जीवन में आपत्ति-विपत्ति आती ही रहती हैं, शत्रुओं की शत्रुता से हानि भी पहुँचती है तो कई बार झूठी बातों से अपयश होता है। विपत्ति से घिरने पर, मुकदमे में फँसने पर और शत्रुओं की प्रबलता होने बगलामुखी की उपासना की जाती है। इसके अनुष्ठान से शत्रु प्रभावहीन हो जाते हैं और विपत्तियाँ समाप्त हो जाती हैं यह अनुभव सत्य है। एक बार मेरे परिचित व्यक्ति पर तीन सौ दो का (हत्या का) केस लग गया था। वह व्यक्ति निस्सन्देह रूप से निर्दोष था किन्तु कानून और गवाहों के आधार पर वह अपराधी होता था। मैंने उसे बगलामुखी का प्रयोग बतलाया और वह छूट गया। इन अनुभवों के आधार पर मैं विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि विषम सयस्या और विपत्ति से घिर जाने पर यह प्रयोग अचूक सिद्ध हुआ है।

बगलामुखी का दूसरा नाम पीताम्बरा भी है इसलिए इसका प्रयोग करते समय प्रत्येक वस्तु पीली ही हुआ करती है। देवी को चढाने के लिए पीले कनेर के फूल या पीले रंग के फूल, गाय का घी (दीपक में) अथवा सरसों का तेल, हल्दी की माला, पहनने को—उपासना के समय—पीला वस्त्र, पीने के लिए पीली गाय का दूध, खाने में बेसन

की वस्तुयें और आसन पीले रग का। कहने का आशय यह है कि साधक अपने आपको पीले रंग की वस्तुओं से सज्जित कर ले और बगलामुखी का ध्यान करे तो उनका रंग और वस्त्र पीले ही मानकर चले।

विधि—आधी रात के समय दक्षिण की तरफ मुख करके बैठना चाहिए। इस प्रयोग में स्नानदि की पवित्रता पूरी रखनी चाहिए क्योंकि यह प्रयोग उग्र प्रयोग है इसलिए शुद्धता और पवित्रता पूर्वक करने से चमत्कारिक सफलता मिलती है। यों बगलामुखी की उपासना का बड़ा विस्तृत विधान है किन्तु संक्षेप से करने पर भी कार्य सिद्धि होती है।

कार्यरंभ करने से पूर्व गणपति और इष्ट देवता का स्मरण करके दाहिने हाथ में जल लेकर संकल्प बोले—संकल्प में देश, काल और स्थान का वर्णन करके कार्य का नाम ले फिर······नामा हम् बगलामुखीदेव्याः आराधनम् करिष्ये, कहकर वह पानी धरती पर डाल दे। पूरा संकल्प इस तरह है, जम्बुद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्तान्तर्गत ब्रह्मावर्तैक देशे, गंगायाः उत्तरे तटे नर्मदायः दक्षिणे तटे······राज्ये······ग्रामे ······संवत्सरे···मासानां मासोत्तमे मासे······मासे······पक्षे······ तिथौ······वासरे······नामा हम् विपत्ति विनाशार्थम्। शत्रु पराभवार्थम्। न्यायालयस्थाभियोग निवारणाय बगलामुखी—देव्याः जपं पाठं च करिष्ये।

पालथी मारकर बैठा हुआ साधक बगलामुखी का ध्यान करे। ध्यान करने का मन्त्र है—

श्यामवर्णा चतुर्बाहुम् शंखचक्रलसत्कराम्।
गदापद्मधरां देवीम् सूर्यासन कृताश्रयाम्।
निशीथे वरदाम् देवीम् गायत्रीम् संस्मरेत् हृदि।

ध्यान के बाद आवहन, आसन, आचमन, स्नान, वस्त्र, गन्ध, फल, ताम्बूल, धूप, दीप, नैवेदय समर्पित करके—

'मातर्भञ्जय मद्विपक्ष वदनं जिह्वांचलं कीलय,
ब्राह्मीं मुद्रय मुद्रयाशु धिषणामग्रे गतिं स्तम्भय।'

शत्रूंश्चूर्णय चूर्णयाशु गदया गौरांगि पीताम्बरे,
विघ्नौघं बगले हर प्रणमतां कारुण्यपूर्णेक्षणे॥

इस श्लोक से नमस्कार निवेदन करे।

भगवती पीताम्बरा का अर्चन-पूजन करने के बाद अंगन्यास करन्यास करे। करन्यास—ह्लीम् अंगुष्ठाभ्याम् नमः। बगलामुखी तर्जनीभ्याम् नमः। सर्वदुष्टानां मध्यमाभ्याम् नमः। वाचं मुखं पदं स्तम्भय अनामिकाभ्याम् नमः। जिह्वाम् कीलय कीलय कनिष्ठिकाभ्याम् नमः। बुद्धिम् विनाशय ह्लीम् ओम् करतल कर पृष्ठाभ्याम् नमः। अर्थात् ह्लीम् बोलकर अंगूठे को अँगुलियों से, बगलामुखी बोलकर अँगूठों से पहली अँगुली को, सर्वदुष्टानाम् बोलकर बिचली अँगुली को छूता जाय यह करन्यास है। अंगन्यास में दाहिने हाथ की अँगुलियाँ और अँगूठा मिलाकर उन अंगों को छूता जाय जिनके लिए लिखा गया है 'ओम् ह्लीम् हृदयाय नमः। बगलामुखी शिरसे स्वाहा। सर्वदुष्टानाम् शिखायै वषट्। वाचं मुखं पदं स्तम्भय कवचाय हुम्। जिह्वाम् कीलय कीलय नेत्र त्रायाय वौषट्। बुद्धिम् विनाशय ह्लीम् ओम अस्त्राय फट् तब हाथ में जल लेकर विनियोग करना चाहिए। विनियोग है—ओम् अस्य श्री बगलामुखी मन्त्रस्य ब्रह्म ऋषिः गायत्री छन्दः बगलानाम्नी चिन्मयशक्तिर्देवता ओम् बीजम् ह्लीम् शक्ति जपे विनियोगः।

प्राणायाम करके मन को स्वस्थ एकाग्र कर ले और बगलामुखी के मन्त्र का जप करे। मन्त्र है—ओम् ह्लीम् बगलामुखि सर्वदुष्टानाम् वाचं मुखं पदं स्तम्भय जिह्वाम् कीलय कीलय बुद्धिम् नाशय ह्लीम् ओम्। इस मन्त्र की ग्यारह माला जपे। माला जपने के पश्चात् बगलामुखी स्त्रोत के ग्यारह पाठ करे। यह जप और पाठ 'गुह्याति गुह्य गोप्त्री त्वं गृहाणास्यत्कृतं जपं सिद्धिर्भवतु मे देवित्वत्प्रासादान्महेश्वरि।

इस मन्त्र को बोलकर देवी के बाँयें हाथ में अर्पित कर दे।

जहाँ तक मेरा विश्वास और अनुभव है इस प्रयोग के नवें या ग्यारहवें दिन तक ही काम सफल हो जाता है। इसलिए समाप्ति के दिन जितने पाठ अथवा जप हुए उनका दशांश हवन और क्वारी

कन्याओं को भोजन करावे। भोजन में पीली वस्तु और पीला कपड़ा उन कुमारिकाओं को दे। पूर्ण संयम और पवित्र रहने से यह प्रयोग सारी विपदाओं को हरता है।

राम रक्षा स्तो

कल्याण में सैकड़ों व्यक्तियों ने राम रक्षा स्तोत्र के चमत्कारी प्रभाव का वर्णन छपवाया है। इनके अलावा भी हज़ारों-लाखों व्यक्ति ऐसे हैं। जिन्होंने इस स्तोत्र के चमत्कारी परिणाम देखे हैं। असल में बीमारी से छुटकारा पाने के लिए और दुष्टों की करतूत से बचने के लिए तथा भूत बाधा दूर करने के लिए राम रक्षा स्तोत्र का प्रयोग किया जाता है। किसी भी मन्त्र को प्रयोग में लाने लायक करने के लिए सिद्ध किया जाता है। फिर भगवान राम दुष्टों के विनाश और सज्जनों के परित्राण के लिए स्वयं अवतरित हुए थे। इसलिए वे अशरण-शरण हैं और आर्तहृदय से पुकारने पर सहायता करते हैं। सबसे बड़ी बात रामोपसना की यह है कि इसमें चूक हो जाने पर भी साधक का कोई अनिष्ट नहीं होता, गुरु के बिना भी इनका प्रयोग सिद्ध हो हो जाता है। इतना अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि श्लोकों का उच्चारण शुद्ध किया जाय। राम रक्षा स्तोत्र आगे दिया जा रहा है।

विधि—आश्विन शुक्ल अथवा चैत्र शुक्ल के नवरात्रों में (प्रतिपदा से नवमी तक) नौ दिन तक प्रतिदिन ग्यारह पाठ राम रक्षा स्तोत्र के करने चाहिएँ। समाप्ति के दिन राम रक्षा स्तोत्र के प्रत्येक श्लोक से हवन करना चाहिए और यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन करना चाहिए। प्रातःकाल सूर्य उदय से पहले स्नानादि करके भगवान् राम के मन्दिर में अथवा घर के किसी एकान्त कमरे में राम की प्रतिमा या चित्र स्थापित करे उसकी पंचोपचार या षोडशोपचार से पूजन करके भगवान् राम के धनुर्धर रूप का ध्यान करना चाहिए। दीपक और अगरबत्ती या धूप पाठ करते समय जलते रहने चाहिए। नौ दिन तक एक समय भोजन करना चाहिए, भोजन सात्विक और हल्का और सुपाच्य हो।

उपासना वाले घर में ही धरती पर शयन करना चाहिए और भगवान् राम का ध्यान अहर्निश करते रहना चाहिए। नौ दिन के इस प्रयोग से राम रक्षा स्त्रोत सिद्ध हो जाता है फिर इसका कभी भी प्रयोग किया जा सकता है।

राम रक्षा स्तोत्र (मूल)

चरितं रघुनाथस्य, शत कोटि प्रविस्तरम्।
एकैकमक्षरं पुंसां, महापातक नाशनम्।१।

ध्यात्वा नीलोत्पलश्यामं, रामं राजीव लोचनम्।
जानकी लक्ष्मणोपेतं, जटा मुकुट मण्डितम्।२।

सासितूण धनुर्बाण पाणि नक्तं चरान्तकम्।
स्वलीलया जगत् त्रातु, माविर्भूतमजं विभुम्।३।

राम रक्षां पठे पठेत्प्राज्ञः पापघ्नीं सर्वकामदाम्।
शिरो मे राघवः पातु भालं दशरथात्मजः।४।

कौशल्येयः दृशोः पातु विश्वामित्र प्रियः श्रुती।
घ्राणं पातु मखत्राता मुखं सौमित्र वत्सलः।५।

जिह्वां विद्यानिधिः पातु कण्ठं भरत वन्दितः।
स्कन्धौ दिव्यायुधः पातु भुजौ भग्नेश कार्मुकः।६।

करौ सीतापतिः पातु हृदयं जामदग्न्य जित्।
मध्यं पातु खरध्वंशी नाभिम् जाम्बवदाश्रयः।७।

सुग्रीवेशः कटिं पातु सक्थिनी हनुमत्प्रभुः।
उरू रघूत्तमः पातु रक्षः कुल विनाश कृत्।८।

जानुनी सेतुकृत्पातु जंघे दश मुखान्तकः ।
पादौ विभीषणश्रीदः पातु रामोऽखिलं वपुः ।९।

एतां रामबलो पेतां रक्षां यः सुकृती पठेत् ।
सः चिरायुः सुखी पुत्री विजयी विनयी भवेत् ।१०।

पाताल भूतल व्योम चारिणः छद्म चारिणः ।
न द्रष्टुमपि शक्तास्ते रक्षितं राम नामभिः ।११।

रामेति रामः भद्रेति रामचन्द्रेति वास्मरन् ।
नरो न लिप्यते पापै भुक्ति मुक्ति च विन्दति ।१२।

जगत् जैत्रैक मन्त्रेण रामनाम्नाभि रक्षितम् ।
यः कण्ठे धारयेत्तस्य करस्थाः सर्वसिद्धयः ।१३।

वज्र पंजर नामेदं यो राम कवचं स्मरेत् ।
अव्याहताज्ञः सर्वत्र लभते जयमंगलम् ।१४।

आदिष्टवान् यथा स्वप्ने राम रक्षामिमां हरः ।
तथा लिखितवान्प्रातः प्रबुद्धो बुध कौशिकः ।१५।

आरामः अल्पवृक्षाणाम् विरामः सकलापादम् ।
अभिरामः स्त्रिलोकानाम् रामः श्रीमान्सनः प्रभुः । १६।

तरुणौ रूप सम्पन्नौ सुकुमारौ महाबलौ ।
पुण्डरीक विशालाक्षौ चीरकृष्णाजिनाम्बरौ ।१७।

फलमूलासिनौ दान्तौ तापसौ ब्रह्मचारिणौ ।
पुत्रौ दशरथस्यैतौ भ्रातारौ रामलक्ष्मणौ ।१८।

शरण्यौ सर्वं सत्वानाम् श्रेष्ठौ सर्वधनुष्मताम् ।
रक्षः कुल निहन्तारौ त्रायताम् नौ रघूत्तमौ ।१९।

आत्त सज्ज धनुषा विषुस्पृशा वक्षयाशुग निषंग संगिनौ ।
रक्षणाय मम रामलक्ष्मणावग्रतः पथि सदैव गच्छताम् ।२०।

सन्नद्धः कवची खड्गी चाप बाणधरो युवा ।
गच्छन्ममोरथान्नश्च रामः पातु सलक्ष्मणः ।२१।

रामो दाशरथि शूरो लक्ष्मणानुचरो बली ।
काकुत्स्थः पुरुषः पूर्णः कौशल्येयो रघूत्तमः ।२२।

वेदान्त वेदयो यज्ञेशः पुराण पुरुषोत्तमः ।
जानकी वल्लभः श्रीमानप्रमेय पराक्रमः ।२३।

इत्येतानि जपन्नित्यम् मद्भक्तः श्रद्धयान्वितः ।
अश्वमेधाधिकं पुण्यं सम्प्राप्नोति न संशय ।२४।

रामं दूर्वादलश्यामं पद्माक्षं पीतवाससम् ।
स्तुवन्ति नामभिर्दिव्यैः न ते संसारिणो नराः।२५।

रामं लक्ष्मण पूर्वजं रघुवरं सीतापतिं सुन्दरम्,
काकुत्स्थं करुणार्णवम् गुणनिधिं विप्रप्रियं धार्मिकम् ।

राजेन्द्रं सत्यसन्धं दशरथ तनयं श्यामलं शान्तमूर्तिम्,
बन्दे लोकाभिरामं रघुकुल तिलकं राघवम् रावणारिम् ।२६।

रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे ।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ।२७।

श्री राम राम रघुनन्दन राम राम ।
श्री राम राम भरताग्रज राम राम ।
श्री राम राम रण कर्कश राम राम,
श्री राम राम शरणं भव राम राम ।२८।

श्री रामचन्द्र चरणौ मनसा स्मरामि,
श्री रामचन्द्र चरणौ वचसा गृणामि ।
श्री रामचन्द्र चरणौ शिरसा नमामि,
श्री रामचन्द्र चरणौ शरणं प्रपद्ये ।२९।

माता रामो मत्पिता रामचन्द्रः,
स्वामी रामो मत्सखा रामचन्द्रः ।
सर्वस्वं मे रामचन्द्रो दयालुः,
नान्यं जाने नैव जाने न जाने ।३०।

दक्षिणो लक्ष्मणो यस्य वामे च जनकात्मजा ।
पुरतो मारुतिर्यस्य तं वन्दे रघुनन्दनम् ।३१।

लोकाभिरामं रणरंग धीरम्,
राजीव नेत्रं रघुवंशनाथम् ।
कारुण्यरूपं करुणाकरं तम्,
श्रीरामचन्द्रं शरणं प्रपद्ये ।३२।

मनोजवं मारुत तुल्य वेगं,
जितेन्द्रिय बुद्धिमतां वरिष्ठाम् ।
वातात्मजं वानरयूथ मुख्यं,
श्री रामदूतं शरणं प्रपद्ये ।३३।

कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम् ।
आरुह्य कविता शाखाम् वन्दे वाल्मीकि कोकिलम् ।३४।

आपदामप हर्तारम् दातारम् सर्वसम्पदाम् ।
लोकाभिरामं श्री राम् भूयो भूयो नमाम्यहम् ।३५।

भर्जनं भवबीजानाम् अर्जनम् सुख सम्पदाम् ।
तर्जनं यम दूतानाम् राम रामेति गर्जनम् ।३६।

रामो राजमणिः सदा विजयते रामं रमेशं भजे,
रामेणाभिहा निशाचर चमूः रामाय तस्मै नमः ।
रामान्नास्ति परायणं परतरं रामस्य दासोऽस्म्यहम्,
रामे चित्तलयः सदा भवतु मे भो राम ! मामुद्धर ।३७।

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरथे ।
सहस्रनाम तत्तुल्यं राम नाम वरानने । ३८।

इति राम रक्षा स्तोत्रम् ।।

गजेन्द्रमोक्ष

जब कोई व्यक्ति कर्जे से दब जाय, कारागार में डाल दिया जाय अथवा कोई ऐसी उलझन आ जाय जिससे उबरने का कोई रास्ता ही न दीखे उस समय गजेन्द्रमोक्ष स्तोत्र का प्रयोग अमोघ और अचूक रहता है। जिस समय ग्राह द्वारा पकड़ लिए जाने पर हाथी ने अशरण होकर भगवान् को पुकारा था और भगवान् नंगे पाँव दौड़कर आये थे वही स्थिति इसके प्रयोग करने पर होती है अर्थात् आर्त भाव से पुकारने पर दैवी सहायता निश्चित रूप से मिलती है। नवरात्रों में अथवा किसी शुभ मुहूर्त में इस स्तोत्र का पाठ प्रारम्भ करके नौ या ग्यारह दिन तक करना चाहिए।

विधि—बाजार से कोई मूर्ति अथवा चित्र, जिसमें हाथी को मगर से छुड़ा रहे भगवान् विष्णु का रूप हो, लाकर उसके समक्ष प्रात:काल स्नानादि से निवृत होकर बैठ जाना चाहिए। आसन ऊन अथवा कुशा

का हो। गणपति का स्मरण करके भगवान् शेषशायी विष्णु का ध्यान करे—

'शान्ताकारं भुजंग शयनम् पद्मनाभ सुरेशम्,
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्ण शुभांगम्।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानिगम्यम्,
वन्दे विष्णुं भवभय हरं सर्वं लोकैकनाथम् ॥'

पंचोपचार या षोडशोपचार से पूजन करके श्रद्धा भक्तिपूर्वक प्रणाम करे और पहले 'ओम् नमो भगवते वासुदेवाय' इस द्वादशाक्षर मन्त्र की एक माला फेर ले। नवरात्रों में सिद्ध करने के पश्चात् यदि सुविधा हो सके तो इस प्रयोग को नित्य किया जाय। समाप्ति के दिन थोड़ा-बहुत हवन और ब्राह्मण भोजन कर दिया जाय तो अति उत्तम रहे। एक बार सिद्ध कर लेने पर इस स्तोत्र को कभी भी काम में लिया जा सकता है। पाठ करने में भी पाँच-सात मिनट ही लगते हैं इसलिए नित्य भी किया जा सकता है।

गजेन्द्रमोक्ष (मूल)

श्री शुक उवाच—

एवं व्यवसितो बुद्धया समाधाय मनो हृदि।
जजाय परमं जाप्यं प्राग् जन्मन्यनुशिक्षितम् ॥

गजेन्द्र उवाच—

नमो भगवते तस्मै यत एतच्चिदात्मकम्।
पुरुषादिवीजाय परेशायाभिधीमहि ॥

यस्मिन्निदम् यतश्चेदं येनेदं य इदं स्वयम्।
यो स्मात्परस्माच्चा परः तं प्रपद्ये स्वयंभुवं ॥

यः स्वात्मनीदं निज माययार्पितम्,
क्वचिद्विभातं क्व च तत्तिरोहितम्।
अविद्धदृक् साक्ष्युभयं तदीक्षते,
स आत्ममूलोवतु मां परात्परः ॥

कालेन पञ्चत्वमितेषु कृत्स्नशो,
लोकेषु पालेषु च सर्वं हेतुषु।
तमस्तदासी दग्हनम् गभीरम्,
यस्तस्य पारेऽभिविराजते विभुः ॥

न यस्य देवाः ऋषयः पदं विदुः,
जन्तुः पुनः कोऽर्हति गन्तुमीरितुम्।
यथा नटस्याकृतिभिर्विचेष्टतो,
दुरत्ययानुक्रमणः स मावतु ॥

दिदृक्षवो यस्य पदम् सुमंगलम्,
विमुक्त संगाः मुनयः सुसाधवः।
चरन्त्यलोक व्रतमव्रणम् वने,
भूतात्मभूताः सुहृदः स नेमे गतिः ॥

न विद्यते यस्य च जन्म कर्म वा,
न नामरूपे गुण दोष एव वा।
तथापि लोकाप्यय संभवाय यः,
स्वमायया तान्यनु काल मृच्छति ॥

तस्मै नमः परेशाय ब्रह्मणेऽनन्त शक्तये।
अरूपायोरु रूपाय नम आश्चर्य कर्मणे ॥

नम आत्म प्रदीपाय साक्षिणे परमात्मने ।
नमो गिरां विदूराय मनसश्चेतसा मपि ॥

सत्वेन प्रतिलभ्याय नैष्कर्म्येण विपश्चित ।
नमः कैवल्य नाथाय निर्वाण सुख संविदे ॥

नमः शान्ताय घोराय, मूढाय गुणधर्मिणे ।
निर्विशेषाय साम्याय नमो ज्ञानघनाय च ॥

क्षेत्रज्ञाय नमस्तुभ्यं सर्वाध्याक्ष साक्षिणे ।
पुरुषायात्म मूलाय मूल प्रकृतये नमः ॥

सर्वेन्द्रिय गुणद्रष्ट्रे सर्व प्रत्यय हेतवे ।
असताच्छाययोक्ताय सदाभासाय ते नमः ॥

नमो नमस्तेऽखिल कारणाय,
निष्कारणायाद्भुत कारणाय ।
सर्वागमाम्नाय महार्णवाय,
नमोऽपवर्गाय परायणाय ॥

गुणारणिच्छान्न चिदुष्मपाय,
तत्क्षोभ विस्फूर्जित मानसाय ।
नैष्कर्म्य भावेन विवर्जितागम,
स्वयं प्रकाशाय नमस्करोमि ॥

माहक् प्रपन्न पशुपाश विमोक्षणाय,
मुक्ताय भूरि करुणाय नमो लयाय ।
स्वांशेन सर्वतनुभृन्मनसि प्रतीत,
प्रत्यग् दृशे भगवते बृहते नमस्ते ॥

आत्मात्माजाप्त गृह वित्त जनेषु सक्तैः
दुष्प्रापणाय गुण संग विवर्जिताय ।
मुक्तात्मभिः स्वहृदये परिभाविताय,
ज्ञानात्मने भगवते नम ईश्वराय ॥

यं धर्म कामार्थ विमुक्ति कामाः,
भजन्त इष्टां गतिमाप्नुवन्ति ।
किंत्वाशिषो रात्यपि देहमव्ययम्,
करोतु मेदभ्रदयो विमोक्षणम् ॥

एकान्तिनो यस्य न कंचनार्थम्,
वाञ्छन्ति ये वै भगवत्प्रपन्नाः ।
अत्यभ्दुतम् त्वच्चरितम् सुमंगलम्,
गायन्त आनन्द समुद्रमग्नाः ॥

तमक्षरम् ब्रह्म परम् परेशम्,
अव्यक्त माध्यात्मिक योग गम्यम् ।
अतीन्द्रियम् सूक्ष्म मिवातिगूढम्,
अनन्त मादयम् परिपूर्ण मीडे ॥

यस्य ब्रह्मादयो देवा वेदाः लोकाश्चराचराः ।
नामरूपविभेदेन फल्ग्व्या च कलया कृताः ॥

यथार्चिषोऽग्नेः सवितुर्गभस्तयो
निर्यान्ति संयान्त्यसकृत्स्वरोचिषः ।
तथा यतोऽयम् गुण सम्प्रवाहो,
बुद्धिर्मनः खानि शरीर सर्गाः ॥

स वै न देवासुर मर्त्यं तीर्यंक्,
न स्त्री न षण्ढो न पुमान् न जन्तुः ।
नायम् गुणः कर्म न सन्नचासन्,
निषेधशेषो जयतादशेषः ॥

जिजीविषे नाहमिहामुया किम्,
अन्तर्बहिश्चावृतयेभयोन्या ।
इच्छामि कालेन न यस्य विप्लवः,
तस्यात्म लोकावरणस्य मोक्षम् ॥

सोऽहम् विश्वसृजम् विश्वमविश्वम् विश्ववेदसम् ।
विश्वात्मान मजं ब्रह्म प्रणतोऽस्मि परं पदम् ॥

योग रन्धित कर्माणो हृदि योग विभाविते ।
योगिनो यं प्रपश्यन्ति योगेशं तं नतोऽस्म्यहम् ॥

नमो नमस्तुभ्यमसह्यवेग—
शक्ति त्रायायाखिल धी गुणाय ।
प्रपन्न पालाय दुरन्त शक्तये,
कदिन्द्रियाणामनवाप्य वर्त्मने ॥

नायं वेद स्वमात्मानम् यच्छयक्तयाहंधिया हतम् ।
तं दुरत्ययमाहात्म्यम् भगवन्तमितोऽस्म्यहम् ॥

श्री शुक उवाच—

एवं गजेन्द्रमुपवर्णित निर्विशेषम्,
ब्रह्मादयो विविधलिंगभिदाभियानाः ।

नैते यदोपससृपुर्निखिलात्मकत्वात्,
तत्राखिलामरमयो हरिणविरासीत् ॥

तं तद्वदार्तमुपलभ्य जगन्निवासः,
स्तोत्रं निशम्य दिविजैः सह संस्तुवद्भिः ।
छन्दोमयेन गरुडेन समुह्ययानः,
चक्रायुधोभ्यगमदाशु यतो गजेन्द्रः ॥

सोऽन्तः सरस्युरु जलेन गृहीत आर्तो
दृष्टवा गरुत्मति हरिं ख उपात्त चक्रम् ॥

उत्क्षिप्यसाम्बुज करं गिरमाह कृच्छात्,
नारायणाखिल गुरो भगवन्नमस्ते ॥

तं वीक्ष्य पीड़ितमजः सहसावतीर्य,
सग्राहमाशु सरसः कृपयोज्जहार ॥

ग्राहाद्विपाटित मुखा दरिणा गजेन्द्रम्,
संपश्यताम् हरिरमूमुचन्द्रस्त्रियाणाम् ॥

इति गजेन्द्रमोक्ष स्तोत्रम् ॥

पाठकों के उपयोगार्थ

हम कृतज्ञ हैं कि आपने यह पुस्तक पढ़ी। आशा है आपको पसन्द आई होगी। निकट भविष्य में ही हम इसी प्रकार की कुछ और पुस्तकें प्रकाशित कर रहे हैं, जिनकी सम्पूर्ण जानकारो के लिए हमें अपना नाम व पूरा पता लिख भेजें।

अनुपम पॉकेट बुक्स
शक्तिनगर, दिल्ली-७

अधिकारी विद्वानों द्वारा लिखित

ज्योतिष सम्बन्धी अन्य अनुपम पुस्तकें

१. भारतीय-ज्योतिष	डॉ० नारायणदत्त श्रीमाली
२. कुण्डली-दर्पण	डॉ० नारायणदत्त श्रीमाली
३. ज्योतिष-योग	डॉ० नारायणदत्त श्रीमाली
४. दशाफल-दर्पण	डॉ० नारायणदत्त श्रीमाली
५. फलित-ज्योतिष	डॉ० नारायणदत्त श्रीमाली
६. वर्षफल-दर्पण	डॉ० नारायणदत्त श्रीमाली
७. अंक-ज्योतिष	डॉ० नारायणदत्त श्रीमाली
८. अंक-दीपिका	डॉ० नारायणदत्त श्रीमाली
९. हस्ताक्षर-विज्ञान	डॉ० नारायणदत्त श्रीमाली
१०. हस्तरेखा-विज्ञान	डॉ० सुरेशचन्द्र गौड़
११. मुखाकृति-विज्ञान	श्री गोचर शर्मा
१२. ज्योतिष-विज्ञान	डॉ० हरिकृष्ण छंगाणी
१३. मन्त्र विज्ञान	डॉ० गोविन्द शास्त्री

मूल्य प्रति पुस्तक केवल तीन रुपए

पाँच पुस्तकें एक साथ मँगाने पर डाक-व्यय माफ

प्रकाशक

अनुपम पॉकेट बुक्स,

शक्तिनगर, दिल्ली-७

मन्त्र ईश्वरीय शक्ति है, जिसके द्वारा मनुष्य
की गुप्त शक्तियों का उदय होता है और
जिसके नियमित स्मरण एवं चिन्तन करने
से मनुष्य की सभी मनोकामनाएँ पूर्ण हो
जाती हैं।

यह केवल मारण, मोहन, उच्चाटन,
स्तम्भन, विद्वेषण और वशीकरण ही नहीं
बल्कि निर्वाण का माध्यम भी है।

प्रस्तुत पुस्तक में विद्वान लेखक ने, आज
वैज्ञानिक दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर
मन्त्र की व्याख्या और सत्य की स्थापना
की है, जिसके कारण पुस्तक की उपादेयता
बहुत बढ़ गई है।

मन्त्र-विज्ञान के प्रेमियों के लिए एक आवश्यक पुस्तक!

अनुपम पॉकेट बुक्स